स्व० पुण्यश्लोका माता मूर्तिदेवीकी पवित्र स्मृतिमें
तत्सुपुत्र साहू शान्तिप्रसादजी द्वारा
संस्थापित

भारतीय ज्ञानपीठ मूर्तिदेवी जैन-ग्रन्थमाला

अपभ्रंश ग्रन्थाङ्क ३

इस ग्रन्थमालामें प्राकृत संस्कृत अपभ्रंश हिन्दी कन्नड तामिल आदि प्राचीन भाषाओंमें उपलब्ध आगमिक दार्शनिक, पौराणिक साहित्यिक और ऐतिहासिक आदि विविध-विषयक जैन-साहित्यका अनुसन्धानपूर्ण सम्पादन और उसका मूल और यथासम्भव अनुवाद आदिके साथ प्रकाशन होगा। जैन भण्डारोंकी सूचियाँ शिलालेख-संग्रह विशिष्ट विद्वानोंके अध्ययन ग्रन्थ और लोकहितकारी जैन-साहित्य ग्रन्थ भी इसी ग्रन्थमालामें प्रकाशित होंगे।

ग्रन्थमाला सम्पादक
डॉ० हीरालाल जैन
एम ए डी लिट्
डॉ० आ० ने० उपाध्ये
एम ए डी लिट्

प्रकाशक
अयोध्याप्रसाद गोयलीय
मन्त्री भारतीय ज्ञानपीठ
दुर्गाकुण्ड रोड,
वाराणसी

• मुद्रक •
बाबूलाल जैन फागुल्ल, सन्मति मुद्रणालय दुर्गाकुण्ड रोड वाराणसी

स्थापनाब्द
फाल्गुन कृष्ण ९
वीर नि० २४७०

सर्वाधिकार सुरक्षित

विक्रम सं० २०००
१८ फरवरी सन् १९४४

JÑĀNAPĪTH MŪRTIDEVĪ JAIN GRANTHMĀLĀ
Apabhransha Grantha No. 3

PAUMCHARIU

of

KAVIRĀJA SVAYAMBHŪDEVE

Vol 3

WITH

HINDĪ TRĀNSLATION

Translated by
Devendra Kumar Jain M. A., Sahityacharya

Published by

Bhāratīya Jnānapītha Kāshī

First Edition 1000 Copies

MAGHA VIR SAMVAT 2484
VIKRAMA SAMVAT 2014
JANUARY 1958

Price Rs. 8/

Bharatiya Jnana-Pitha Kashi

FOUNDED BY

SETH SHANTI PRASAD JAIN

In Memory of his late Benevolent Mother

SHRI MURTI DEVI

BHARATIYA JNANA PITHA MURTI DEVI JAIN GRANTHAMALA

Apabhransh Granatha No. 3

In this Granthamala critically edited Jain agamic philosoph cal, pauranic, literary historical and other original texts available in prakrit, sanskrit, apabhransha, hindi, kannada and tamil etc will be published in their respective languages with their translations in modern languages

AND

Catalogues of Jain Bhandaras, inscriptions, studies of competent scholarts & popular jain literature will also be p blished

General Ed tor	Publisher
Dr. Hiralal Jain, M A D. Litt.	**Ayodhya Prasad Goyaliya**
Dr. A N Upadhye M A D.Litt	Secy Bharatiya Jnanapitha
	Durgakund Road Varanasi,

Founded on Phalguna Krsn na 9 Vira Sam. [illegible]70 } All Rights Reserved { V kr ma S ma t [illegible]000 18th F b 1944

विषय-सूची

भाग ३

छियालीसवीं सन्धि

सैंतालीसवीं सन्धि

अड़तालीसवीं सन्धि

उनचासवीं सन्धि

पचासवीं सन्धि

छप्पनवीं सन्धि

पद्मचरित

बैंतालीसवीं सन्धि

ठीक इसी अवसरपर किष्किधपुरमें राजा सहस्रगति बनावटी सुग्रीव बनकर असली सुग्रीवपर इसी प्रकार टूट पड़ा जैसे एक हाथी दूसरे हाथीपर टूट पड़ता है।

(१) असली सुग्रीव अपने प्रतियोगी (नकली सुग्रीव) को नहीं जान पाया। अपना मान कलंकित होनेसे वह म्लान हो रहा था। माया सुग्रीवका पराभव उसके हृदयमें काँटे जैसा चुभ रहा था। वनोंवन भटकता हुआ वह खर-दूषणके युद्धमें पहुँच गया। उसने वहाँ देखा कि सारी सेना नष्ट-भ्रष्ट हो गई है। वह तीरों और खुरपोंसे छिन्न-भिन्न कानों आ चुकी है। कहीं रथोंके सैकड़ों टुकड़े पड़े थे, कहींपर निर्जीव अश्व थे, कहींपर गजघटा लोट पोट हो रही थी, कहींपर पक्षि-समूह योधाओंके शव खा रहे थे, कहींपर ध्वजचिह्न छिन्न-भिन्न पड़े हुए थे कहींपर धड़ नृत्य कर रहे थे और कहींपर रथ अश्व और गजोंके आसन शून्यासनकी तरह घूम रहे थे। किष्किंधराज सुग्रीवने जब उस भयभीषण युद्धका दृश्य तो उसे ऐसा लगा मानो लक्ष्मण रूपी महागजन (घुसकर) कमलवनको ही ध्वस्त कर दिया हो ॥१-४॥

[२] उस भीषण रणको देखकर उसने खर-दूषणके सारा सम्बन्धियोंसे पूछा "यह कैसा आश्चर्य किसने सेनाको इस तरह जर्जर कर दिया।" यह सुनकर खर-दूषणके एक सम्बन्धीने भारी हृदयसे कहा कि "राम और लक्ष्मण नामके दशरथके दो पुत्र वनवासके लिए आये हैं। उनमें लक्ष्मण अत्यन्त दृढ़ मनका है और

पउमचरित

तेंतालीसवीं संधि

ठीक इसी अवसरपर किष्किंधपुरमें राजा सहस्रगति वनावटी सुग्रीव बनकर असली सुग्रीवपर उसी प्रकार टूट पड़ा जैसे एक हाथी दूसरे हाथीपर टूट पड़ता है।

(१) असली सुग्रीव अपने प्रतियोगी (नकली सुग्रीव) को नहीं जान पाया। अपना मान कलंकित होनेसे वह म्लान हो रहा था। मामा सुग्रीवका पराभव उसके हृदयमें काँटे जैसा चुभ रहा था। वनोंवन भटकता हुआ वह खर-दूषणके युद्धमें पहुँच गया। उसने वहाँ देखा कि सारी सेना नष्ट-भ्रष्ट हो गई है। वह तीरों और मुद्गरोंसे छिन्न-भिन्न कर दी जा चुकी है। कहीं रथोंके सैकड़ों टुकड़े पड़े थे, कहींपर निर्जीव अश्व थे कहींपर गजघटा लोट पोट हो रही थी कहींपर पक्षि-समूह योधाओंके शव खा रहे थे कहींपर ध्वजचिह्न छिन्न-भिन्न पड़े हुए थे, कहींपर धड़ नृत्य कर रहे थे और कहींपर रथ अश्व और गजोंके आसन शून्यासनकी तरह घूम रहे थे। किष्किंधराज सुग्रीवने जब उस भयभीपण युद्धको देखा तो उसे ऐसा लगा मानो लक्ष्मण रूपी महागजने (घुसकर) कमलवनको ही ध्वस्त कर दिया हो ॥१-९॥

[२] उस भीषण रणको देखकर उसने खर-दूषणके सगे सम्बन्धियोंसे पूछा "यह कैसा आश्चर्य किसने सेनाको इस तरह उजाड़ कर दिया।" यह सुनकर खर-दूषणके एक सम्बन्धीने भारी हृदयसे कहा कि "राम और लक्ष्मण नामके, दशरथके दो पुत्र वनवासके लिए आये हैं। उनमें लक्ष्मण अत्यन्त दृढ़ मनका है और

असि-रयणु लइउ तियसहुँ वलिउ । चन्दणहिहें ओम्मत्थु दरमलिउ ॥६॥
कुमारें मय णर-कुमारहुँ । अजयहुँ जय-कारिय सिहुसवहुँ ॥७॥
चलिमइ ते वि सहुँ अन्तउरेंण । तेण वि दोसाविय तरवारेंण ॥८॥

घत्ता

केण वि मणें अमरिस-कुद्धएँण लिय णेहिति धर्णे रावहों ।
पाडिउ अवाइ अमाणु कुमें पुच्छिउ कारणु भाइयहों ॥९॥

[२]

पुच्छिउ किसुयेंण वि संगाम-गाइ । विन्ताविउ किक्किन्धाहिवइ ॥१॥
किर पइसमि गम्पि काहुँ सरणु । किउ पहवें सहु मि अमर मरणु ॥२॥
पइएँ अवसरें को संभरमि । किं हणुवहों सरणु पईसरमि ॥३॥
तेण वि रिउ जिणें वि ण सक्किउ । पर्वोहिउ हउँ जिणेसु किंवउ ॥४॥
किं अवमण्णिमइ परवयणु । जं ण णिय-कम्मइ कुल-मणु ॥५॥
अण्णइँ विविणाएँवि वे वि जण । सहुँ रज्जें अप्पुणु वेइ मण ॥६॥
वर दूसण वेर णिमएण्णहुँ । वर सरणु जामि रहु-णन्दणहुँ ॥७॥
चिन्तेविणु किक्किन्धाहिवेंण । हक्कारिउ मेहणाउ विज्जेण ॥८॥
'तं गम्पि विराहिउ एम भणु । सुग्गउ सुग्गीउ आउ सरणु' ॥९॥
पिय-वयणेंहिँ दूउ विसज्जियउ । गउ अण्णार-माण-विवज्जियउ ॥१०॥
पायाल-लङ्क-पुरें पइसरेंवि । तें पुणु विराहिउ जोक्कारेंवि ॥११॥

घत्ता

'सुग्गीउ सुतारा-कारणेंण पिउ-सुग्गीवें वञ्चियउ ।
किं पइसरहु किं म पइसरउ तुम्हहँ सरणु समच्छियउ' ॥१२॥

उसने शम्बूककुमारका सिर काट डाला है और बलपूर्वक उसने देवोंसे सूर्यहास खड्ग छीन लिया है। इसीने चन्द्रनखाका यौवन कलंकित किया। जिससे रोती-बिसूरती हुई वह, अब खरसीसे विभूषित खर और दूषणके पास आई। तब उन दोनोंने आकर लक्ष्मणसे युद्ध ठाना। परन्तु उसने तत्काल इनके दो टुकड़ कर दिये। इतनेमें अमपसे मरकर किसीने रामकी पत्नी सीता देवीका अपहरण कर लिया। पक्षिराज जटायुने पीछा किया। परन्तु उसे भी मार डाला। युद्धका कारण यही है" ॥१-८॥

[२] युद्धकी हालत सुनकर सुग्रीव इस चिन्तामें पड़ गया कि क्या वह उनकी (राम-लक्ष्मणकी) शरणमें चला जाय। हाय विधाता तूने केवल मुझे मौत नहीं दी ? इस अवसर पर मैं किस स्मरण करूँ। क्या हनुमानकी शरणमें जाऊँ। परन्तु वह भी शत्रुको नहीं जीत सकता। उल्टा मैं तिरस्कृत कर दिया जाऊँगा। क्या रावणसे अभ्यर्थना करूँ। नहीं नहीं। वह मनका लोभी और खीका लपट है। वह हम दोनों (असली और नकली) को मारकर राज्यसहित स्त्रीको भी ग्रहण कर लेगा। अतः खर-दूषणका मान मर्दन करनेवाले राम और लक्ष्मणकी शरणमें जाना ही ठीक है। यह सब सोच विचारकर किष्किन्धापुर नरेश सुग्रीवने मेघनाद दूतको पुकारा और यह कहा "जाकर विराधितसे कहो कि सुग्रीव शरणमें आ गया है। इस प्रकार प्रिय वचनोंसे उसने दूतको विसर्जित किया। वह दूत भी मान और मत्सरसे रहित होकर गया। पाताल लंका नगरमें प्रवेशकर उसने अभिवादनके साथ विराधितसे पूछा सुतारको लेकर मायासुग्रीवसे पराजित असली सुग्रीव आपकी शरणमें आया है। उसे प्रवेश दूँ या नहीं" ॥१-१२॥

[४] यह सुनकर विराधितने हर्षपूर्वक कहा, "भीतर ले आओ। सचमुच मैं धन्य हुआ कि जो किष्किंधानरेश स्वयं अभिमान छोड़कर मेरी शरणमें आये।" तब सम्मानित होकर दूत वापस गया और आनन्दके साथ अपने स्वामीको लेकर फिर आया। इतनेमें तूर्य-ध्वनि सुनकर राघवने विराधितसे पूछा, "सेना लेकर यह कौन राजाधिप होकर आता हुआ दीख पड़ रहा है।" यह सुनकर, नेत्रानन्ददायक चन्द्रोदर पुत्र विराधितने कहा, कि सुग्रीव और बालि ये दो भाई-भाई हैं। इनमेंसे बड़ा भाई सन्यास लेकर चला गया है। और इसको किसी दुष्टने पराजय करके वनवासमें डाल दिया है। यह सूरजका पुत्र विमलमति ताराका स्वामी और वानरध्वजी, वही सुग्रीव है जिसका नाम कथा-कहानियोंमें सुना जाता है।।१-४।

[५] इस प्रकार राम-लक्ष्मण और विराधितमें बातें हो ही रही थीं कि इतनेमें उन्होंने सुग्रीवको वैसे ही देखा जैसे आगम त्रिलोक और त्रिकाल को देखते हैं। आते हुए वे ऐसे लग रहे थे मानो चारों दिग्गज एक साथ मिल गये हों। जाम्बवन्तने उन्हें बैठाया। तदनन्तर आदर पूर्वक लक्ष्मणने सुग्रीवसे पूछा कि तुम्हारी पत्नी का अपहरण किसने किया। यह सुनकर जाम्बवन्त अपना माथा झुकाकर सारा वृत्तान्त सुनाने लगा। (उसने कहा) कि जब सुग्रीव वनक्रीड़ा करनेके लिए गया था तो मायावी सुग्रीव उसके घरमें घुस कर बैठ गया। बालिका अनुज सुग्रीव जब अपने मन्त्रियोंके साथ घर लौटा तो कोई भी यह पहचान नहीं कर सका कि इन दोनोंमें असली राजा कौन है। सबके मनमें आश्चर्य हो रहा था। इतनेमें कुतूहल जनक दो सुग्रीव देखकर, समस्त सुग्रीवकी सेना देखने

समुद्रकी तरह (दो भागोंमें विभक्त हो गई।) आधी असली सुग्रीवके पास रही और आधी नकली सुग्रीवसे जा मिली ॥१-५॥

[६] सात अक्षौहिणी सेना इधर थी और सात ही उधर। इस प्रकार वह आधी-आधी बट गई। अंग और अंगद दोनों वीर विघटित हो गये। अंग मायासुग्रीवको मिला और अमंग अंगद असली सुग्रीवको। दोनों शिविरोंमें वे दोनों भाई वैसे ही साह रहे थे जैसे रात और दिनमें चन्द्र और सूर्य सोहते हैं। बालि के पुत्र वीर चन्द्र-किरणका चेहरा भी (क्रोधसे) तमतमा उठा। वह अभय देकर तारादेवीकी रक्षा करने लगा। उसने कहा—"यदि तुम इसके पास आये तो मारे जाओगे, युद्ध करते हुए तुममेंसे जो जीतेगा उसे मैं तारादेवी सहित समस्त राज्य अर्पित कर दूँगा।" परन्तु उन दोनोंमेंसे एक भी युद्धमें प्रवेश नहीं पा रहा था। इतने में सुग्रीवने नल और नीलसे कहा कि यह तो वही कहानी सच होना चाहती है कि कोई (दूसरा ही) परस्त्रीका गृह-स्वामी हो गया। एक दूसरेको सहन न करते हुए वे लोग अपनी-अपनी तलवारें लेकर एक-दूसरेके निकट पहुँचे। वे आपसमें लड़नेवाले ही थे कि द्वाररक्षकोंने उन्हें उसी प्रकार हटा दिया जिस तरह निरंकुश उन्मत्त गजोंको महावत हटा देते हैं ॥१-५॥

[७] इस प्रकार नगरके लोगोंके हटा देनेपर वे दोनों नगरके उत्तर-दक्षिणमें स्थित होकर लड़ने लगे। जब लड़ते-लड़ते बहुत दिन व्यतीत हो गये तो हनुमान सहसा कुपित हो उठा। 'भरसर' "(बनावटी) सुग्रीवका मानमर्दन हो" यह कहकर वह सुभट सेनाके साथ सन्नद्ध हो गया। और "मारो मारो" कहता हुआ वह वहाँ जा पहुँचा। उसका शरीर वेग और दर्पसे चञ्चल रहा था। उसने कहा—"मामा सुग्रीव अपने मनमें खिन्न न होओ। माया

सुग्रीवसे कहो। यदि मैं आज उसके मुजवणको मग्न न कर दूँ तो मैं अञ्जनादेवीका पुत्र न कहलाऊँ।" यह सुनकर किष्किन्ध राज सुग्रीव गरजता हुआ उसपर दौड़ा। पुलकित होकर वे दोनों ऐसे भिड़ गये मानो नव वर्षाकालमें नव मेघ ही उमड़ पड़े हों। तलवार, चाप, चक्र गदा, मुद्गर, जिससे भी सम्भव हो सका, वे लड़ने लगे। परन्तु हनुमान भी उनमेंसे असली नकली सुग्रीवकी पहचान नहीं कर सका, जिस प्रकार अज्ञानी जीव स्व-परका विवेक नहीं कर पाता ॥१-६॥

[८] हनुमान जब दोनोंमेंसे एककी भी पहचान नहीं कर सका तो वह भी वापस चला आया। तब असली सुग्रीव भी अपने प्राण लेकर इस प्रकार भागा मानो सिंहकी चपेटसे मद माता गज ही भागा हो। वहाँसे वह खर-दूषणकी शरणमें गया। किन्तु रामने उन्हें पहले ही समाप्त कर दिया था। वहीं पर उसने आप लोगोंके विषयमें यह खबर सुनी कि अकेले लक्ष्मणने (खर दूषणके) अठारह हजार योद्धाओंका किस प्रकार समाप्त कर दिया। इस लिए अच्छा हो आप ही असली सुग्रीवकी रक्षा करें। हे परम मित्र! आप शरणागतकी रक्षा करें।' इस प्रकार जाम्बवन्तके याचना करनेपर राघवने सुग्रीवसे कहा—"मित्र तुम तो मेरे पास आ गये पर मैं किसके पास जाऊँ। जैसे तुम वैसे मैं भी स्त्री-वियोगमें कामग्रहसे गृहीत हूँ। और जङ्गल-जङ्गलमें भटक रहा हूँ।" इसपर सुग्रीवने कहा—"हे देव! सुनिए, मैं प्रतिज्ञा करता हूँ कि यदि मैं सातवें दिन सीतादेवीका वृत्तान्त लाकर न दूँ तो चितामें प्रवेश करूँ" ॥१-६॥

[६] जब उसने जानकीका नाम लिया तो रामने विरहसे व्याकुल होकर कहा "यदि तुम सीताकी वार्ता लाकर दो तो

हे मित्र, सुना ! मैं सातवें दिन तुम्हारी स्त्री तारा देवीको ला दूँगा, यह समझ लो। तुम्हें किष्किन्धनगरका भोग कराऊँगा और छत्र तथा सिंहासन दिलाऊँगा। इसके सिवा तुम्हारे शत्रुका नाश कर दूँगा ! चाहे वह अपने मित्र कृतान्त द्वारा भी रक्षित क्यों न हो। ब्रह्मा, सूर्य, ईश्वर, वह्नि, चंद्रमा, राहु, केतु, बुध, बृहस्पति, गुरु, शनीचर, यम, वरुण, कुबेर और पुरन्दर, ये भी मिलकर यदि उसकी रक्षा करें तो भी वह तुम्हारा शत्रु मुझसे जीवित नहीं बचेगा। यदि मैं इतनी प्रतिज्ञा पूरी न कर सकता तो हे सुग्रीव, सातवें ही दिन मैं संन्यास ग्रहण कर लूँगा" ॥१-९॥

[१०] प्रतिज्ञापर आरूढ़ होकर जब श्रीराघव चले, तो उनका सैन्यदल भी चल पड़ा। दुर्निवार विराधित भी चला। सुग्रीव, राम, कुमार लक्ष्मण ये चारों मित्र ऐसे चले मानो कलिकाल और कृतान्तके मित्र ही चले हों। मानो चारों ही दिग्गज चल पड़े हों या मानो चारों समुद्र ही चलित हो उठे हों या चारों देवनिकाय ही चल पड़े हों, या चारों कपाय ही चलित हो उठे हों। या चारों वेद ही चल पड़े हों या साम, दान, दंड और भेद आ रहे हों। अथवा इतने सब कथनसे क्या काम। वे चारों अपनी ही उपमा आप बनकर चले। थोड़ी ही दूर चलनेपर उन्होंने (सुग्रीव राम लक्ष्मण विराधितने) किष्किन्ध पर्वत देखा। तरह तमाल वृक्षोंसे आच्छन्न वह पर्वत, जिनधर्मकी तरह सावयों [श्रावक और वृक्षविशेष] से सुन्दर था, और वो ऐसा लगता मानो भूमिके उच्च सिर-कमलपर मुकुट ही रखा हो ॥१-९॥

[११] थोड़ी दूरपर उन्हें धन-कंचनसे भरपूर किष्किन्ध नगर दिखाई दिया। वह ऐसा लगता था मानो तारोंसे मंडित आकाश हो या कपिध्वजोंसे आरूढ़ काव्य हो ? या विद्युत बिम्

पित मुखकमल हो या नल (नाल या सरोवर विशेष) से सहित कमल हँस रहा हो या नील (मणि या व्यक्ति विशेष) से अलंकृत आभरण हो या कुन्द (फूल और व्यक्ति) से प्रसाधित विपुल वन हो। या सुग्रीवधाम् (सुग्रीव और गला) सुन्दर हस हो। या सुग्रीवोंका स्थिर ध्यान हो। वह नगर माया सुग्रीवके द्वारा उसी प्रकार माहित हो रहा था जिस प्रकार कुशल व्यक्ति कामिनीके हृदयको मुग्ध कर लेता है। उसी अवसर पर कल-कल करते हुए बड़े-बड़े युद्धोंमें समर्थ, बहुसम्मान और दानका मन रखनेवाले जाम्बवत, कुन्द, इन्द्र नील, नल, लक्ष्मण विराधित और रामने सुग्रीवके ऊपर घोर संकट आनेपर उस किष्किंधानगरको वैसे ही घेर लिया जैसे नव घन सुयमलको घेर लेते हैं ॥१-४॥

[१२] समस्त नगरका घेरा डालकर कपटी सुग्रीवके पास दूत भेजते हुए सुग्रीव राम और लक्ष्मणन उसी क्षण यह संदेश भेजा, 'बहुत कहनेसे क्या उससे वास्तव बात इस प्रकार कहना कि जिससे वह डरे और प्राणों सहित नष्ट हो जाय।" यह वचन सुनकर दूत कपूरपद चल पड़ा मानो सयकालका दूत ही जा रहा हो। वहाँ उसने समामंडपमें प्रवेश किया जहाँ दुर्जेय माया-सुग्रीव था। राम लक्ष्मणने जो संदेश भेजा था उसे तत्काल सुनाते हुए उसने कहा 'आज भी तुम अपना इस कामका मत बिगाड़ो नहीं तो कहाँ की तारा और कहाँ का राज्य। अपने प्राणों सहित नाशको प्राप्त होओगे तुम निश्चय ही जीवित नहीं छूट सकते? हे विटसुग्रीव, तुम सुग्रीवका भी संदेश सुनो। उसने कहा है, "तुम्हारे सिर-कमलके साथ मैं अपना राज्य लूँगा" ॥१-९॥

[१३] यह वचन सुनते ही, उद्भट मुख दुष्ट कपटी सुग्रीवने क्रुद्ध होकर अपनी सेनाको यह आदेश दिया— 'फैल जाओ,

इसको मारो, आहत करो, इस पापीका सिरकमल काट डा नाकके साथ इसके दोनों हाथ भी काट लो, इस दूतको दूतपन दिखाओ, इसे कृतांतका अतिथि बना दो।" तब बड़ी कठिनाईसे मन्त्रियोंने, स्वामीका निवारण किया। सुग्रीवका दूत भी आदरसे मरकर चला गया। यहाँ भी राजा सुग्रीव बैठा नहीं रहा और रथकी पीठपर चढ़कर, पूरी तैयारीके साथ सेनाको लेकर निकल पड़ा, *मानो साक्षात् यम ही आ गया हो, प्रतिपक्ष को क्षुब्ध करनेवाली सात अक्षौहिणी सेनाके साथ उसने प्रयाण किया।* इस प्रकार कपटी सुग्रीव राम लक्ष्मण और सुग्रीवसे आकर भिड़ गया मानो दुष्काल ही हेमंत ग्रीष्म और पावसपर टूट पड़ा हो ॥१-९॥

[१४] दोनों ही सैन्यदल आपसमें टकरा गये जैसे ही जैसे प्रसन्नचित्त मिथुन आपसमें भिड़ जाते हैं, वे वैसे ही अनुरक्त (रक्तरंजित और प्रेमपरिपूर्ण) थे जैसे मिथुन वैसे ही परितृप्त थे जैसे मिथुन परितृप्त होते हैं। वैसे हो कलकल कर रहे थे जैसे मिथुन कलरव करते हैं, वैसे ही सर (बाणों) का छोड़ रहे थे जैसे मिथुन सर (स्वरों) को करते हैं। ऐसे हो अधरोंको काट रहे थे जैसे मिथुन अधरोंको काटते हैं वैसे ही सरों (बाणों) से जर्जर हो रहे थे जैसे मिथुन स्वरों (सर) से क्षीण हो उठते हैं, युद्धक्षेत्र थे वैसे ही आतुर थे जैसे मिथुन आतुर होते हैं। वे वैसे ही चकपका रहे थे जैसे मिथुन चकपकाते हैं वैसे ही उनका मान भंग हो रहा था जैसे मिथुनोंका मान गलित हो जाता है। ऐसे ही काँप रहे थे जैसे मिथुन काँप उठते हैं। वैसे ही पसीना-पसीना हो रहे थे जैसे मिथुन पसीना-पसीना हो जाते हैं। वैसे ही निश्चेष्ट हो रहे थे जैसे मिथुन निश्चेष्ट हो उठते हैं वैसे ही निष्पन्द युद्ध कर रहे थे जैसे मिथुन निष्पन्द होकर सुरत

हैं। तब उस कठिन अवसरपर मन्त्रियोंने आकर दोनों दलोंको हटाते हुए कहा, 'तुम लोग शत्रु धमका अनुसरणकर, अकेले ही द्वन्द्व करो।" ॥१-८॥

[१४] इसी अन्तरमें दोनों सेनाओंको छोड़कर वे दोनों कृत्रिम शत्रु मायसे लड़ने लगे। सुग्रीवने मायासुग्रीवसे कहा, "जिस प्रकार माया और कपटसे तुमने राज्यका भाग लिया, हे सज्जद्रुह, पिशुन, उसी तरह अब ठहर कहाँ जाता है, रथ भाग ढोंक, ढोंक।" यह सुनकर तमतमाते हुए, 'अलणुद्रा राम छिपे हुए मायासुग्रीवने उसकी भर्त्सना की 'क्या उत्तम पुरुषका यही मार्ग है कि जो वह असतीके मनकी तरह सौ बार भग्न हो, फिर भी धृष्ट तुम लड़ते हुए लज्जित नहीं होते युद्धमें गिर-गिरकर फिर चेष्टा करते हो।" इस प्रकार एक दूसरेको सहन न करते हुए वे प्रहार करने लगे। मानो प्रलयके महामेघ ही उठल पड़े हों, पत्थरों वृक्षों और पहाड़ोंसे करवाल, शूल और मुद्गरोंसे उनमें युद्ध ठन गया। तब माया सुग्रीवने वज्र घुमाकर ऐसा मारा कि वह जाकर सुग्रीवके सिरकमल पर गिरा मानो महीधर पर बिजली ही टूटी हो ॥१-६॥

[१५] उस गदा-प्रहारसे सुग्रीव वैसे ही धरतीपर गिर पड़ा जैसे वसन्त कुलपर्वत गिर पड़ता है। गिरकर वह जब अचेतन हो गया तो शत्रुसेनामें कल-कल शब्द होने लगा। तब वहाँ भी सुताराके प्राणप्रिय अपनी सुभायका (भाग) उठाकर रामके पास ले आये। उसने रामसे कहा "आपके रहते मेरी यह अवस्था। तब रामने कहा — 'मैं क्या करूँ किसको मारूँ और किसे बचाऊँ, दोनों ही रण-प्रांगणमें अतुल वीर हैं। दोनों ही विद्याभास प्रबल व अजय हैं। दोनों ही विज्ञान करनेमें कुशल हैं। दोनों ही स्थिर

और स्थूल बाहु हैं। दोनोंका ही वक्षस्थल विशाल और उन्नत है। दोनोंका ही मुखकमल खिला हुआ है। हे सुग्रीव, तुम्हारा सब कुछ उसे भी सोहता है। जो तुम कहते हो, यह मैं मानता हूँ। जैसे कुलवधू दूसरे पुरुषको नहीं पहचानती, वैसे ही मेरी दृष्टि माया सुग्रीवको पहचाननेमें असफल है" ॥१-९॥

[१७] तब रामने सुग्रीवके मनको धीरज बँधाकर अपने धनुषकी ओर देखा। जो सुकलत्रकी तरह प्रमाणित, और उसीकी तरह समथ था। सुकलत्रकी तरह जो दृढ़ गुण (धनुषके गुण और डोरी) से घनीभूत था। सुकलत्रकी ही तरह आश्रयजनक था सुकलत्रकी तरह भार उठानेमें समर्थ था सुकलत्रकी तरह, दूसरेके निकट अपसरणशील था, सुकलत्रकी तरह स्वयंवरसे गृहीत था, जनककी सुता सीताके साथ ही जिसे उन्होंने ग्रहण किया था। उस वज्रावर्तको अपने हाथमें लेकर जैसे ही चढ़ाया वह दसों दिशाओंमें गूँज उठा, मानो प्रलयकालमें काल ही अट्टहास कर उठा हो मानो युगका क्षय होनेपर सागर ही ध्वनित हो उठा हो मानो पहाड़पर बिजली गिरी हो। उसे सुनकर माया सुग्रीवके सैनिक काँप उठे। उस भीषण चाप-शब्दको सुनकर विद्या उसी तरह थरथर काँप उठी जैसे हवासे कदलीका पत्ता, और वह साहसगतिके शरीरसे उसी प्रकार निकलकर चली गई जैसे असती स्त्री पर-पुरुषका रमण करके चली जाती है ॥१-९॥

[१८] विशाल वैतालिकी विद्याने माया-सुग्रीवको छोड़ दिया मानो विलासिनीने निर्धन व्यक्तिको छोड़ दिया हो मानो रोहिणीने चन्द्रमाको छोड़ दिया हो, मानो इन्द्राणीने देवेन्द्रको छोड़ दिया हो मानो सीता महासतीने राम को छोड़ दिया हो, मानो रतिने मदनराजको छोड़ दिया हो, मानो गजघटा

जं विसमगवासु हिमपस्ताइऍ। परमेसु णाइँ पउमासाइऍ॥५॥
जिय-णियऍ जं जणमाणियउ। सहसगइ पयडु जगें जाणियउ॥६॥
जं णिहणिउ सुग्गीवहों तणउ। णमु णिम्मिउ एणिय अप्पणउ॥७॥
णच्चाइउ पेल्लेंवि चहरि थिउ। चम्पूर्वे सर-सन्धाणु किउ॥८॥

घत्ता

तावँ तावँ अप्पवरप-गुणड्ढियहिँ तिक्खेहिँ राम-सिलीमुहेहिँ।
विणिभिण्णु कणयसुग्गीउ रणेँ पञ्चाहारु जेम सुहडेहिँ॥९॥

[१५]

रिउ णिज्जिणेवि सरेहिँ वियारियउ। सुग्गीउ वि पुरेँ पइसारियउ॥१॥
जय मङ्गल तूर-णिघोसु किउ। सहुँ तारऍ रज्जु करन्तु थिउ॥२॥
पुणु वि रामु परिठ्ठ-मणु। णिविसेण पराइउ जिण-भवणु॥३॥
जिण वन्दण सुह-गइ-गामियहोँ। मावें चन्दप्पह सामियहोँ॥४॥
'जय तुहुँ गइ तुहुँ मइ तुहुँ सरणु। तुहुँ माय बप्पु तुहुँ बन्धु-जणु॥५॥
तुहुँ परम-पक्खु परमत्ति-हरु। तुहुँ सव्वहुँ परहुँ पराहिवरु॥६॥
तुहुँ दंसणें णाणें चरिऍ थिउ। तुहुँ सयल-सुरासुरेहिँ णमिउ॥७॥
सिद्धन्तें मन्तें तुहुँ वायरणें। सज्झाऍ झाणें तुहुँ तव-चरणें॥८॥

घत्ता

अरहन्तु बुद्धु तुहुँ हरि हरु वि तुहुँ अण्णाण-तमोह-रिउ।
तुहुँ सुहुमु णिरञ्जणु परमपउ तुहुँ रवि बम्भु सयम्भु सिउ'॥९॥

●

गतिने पापपिण्डको छोड़ दिया हो, पार्वतीने शिवको छोड़ दिया हो। मानो पद्मावतीने धरणेन्द्रको छोड़ दिया हो, अपनी विद्यासे अपमानित होनेपर सहस्रगतिका असली रूप लोगोंके सामने प्रकट हो गया। और असली सुग्रीवकी जो सेना पहले विघटित हो गई थी वह अब उसीकी सेनामें आकर मिल गई। शत्रुको एकाकी स्थित देखकर बलदेव रामने सरसन्धान किया। अनवरत शरीरपर पड़े हुए रामके तीखे बाणोंसे कपट सुग्रीव युद्धमें उसी तरह छिन्न-भिन्न हो गया जैसे विद्वानोंके द्वारा प्रत्याहार (व्याकरणके) छिन्न-भिन्न हो जाते हैं ॥१-९॥

[१६] इस प्रकार शत्रुको बाणोंसे विदीर्णकर रामने सुभावको नगरमें प्रवेश कराया। तब जयमङ्गल और तूर्योंका निर्घोष होने लगा। सुग्रीव ताराके साथ प्रतिष्ठित होकर राजकाज करने लगा। इधर राम भी सन्तुष्ट मन होकर शीघ्र ही जिन-भवनमें पहुँचे और वहाँ उन्होंने शुभगति-गामी चन्द्रप्रभु जिनकी स्तुति की—"जय हो तुम्हीं मेरी गति हो। तुम्हीं मेरी बुद्धि हो। तुम्हीं मेरी शरण हो तुम्हीं मेरे माँ और बाप हो। तुम्हीं बन्धुजन हो तुम्हीं परमपक्ष हो तुम्हीं परमति-हरणकर्ता हो। तुम्हीं सबमें परात्पर हो। तुम दर्शन ज्ञान और चारित्रमें स्थित हो। तुम्हारा सुरासुर नमन करते हैं। सिद्धान्त, मन्त्र, व्याकरण, सन्ध्या ध्यान और तपश्चरणमें तुम्हीं हो। अरहन्त बुद्ध तुम्हीं हो। हरि हर और अज्ञानरूपी तिमिरके शत्रु तुम्हीं हो। तुम सूक्ष्मनिरञ्जन और परमपद हो, तुम सूर्य ब्रह्मा स्वयम्भू और शिव हो।

[४४ चउयालीसमो संधि]

मणु जूरइ जासु ण पूरइ कज्जु वि महारउ जइ करइ ।
सो लक्खणु रामाएसें घरु सुग्गीवहों पइसरइ ॥

[१]

विडसुग्गीवें समरें सर-भिण्णए । गएँ सत्तमएँ दिवसें वोलीणएँ ॥१॥
वुत्तु सुमित्ति पुत्तु बलएवें । 'मित्तु सुगीउ णाहिं किंतु भेवें ॥२॥
तं णिसुणेवि णिग्गउ बाहउ । सव्वहों सीयहु कज्जु परायउ ॥३॥
ण सुजाणिउ एत्थु स हारउ । कामहों केरिउ वइरि सुहारउ ॥४॥
तं उवयारु किं पि णउ जाणहि । अप्पहों उप्पिय कज्ज तो माणहिं ॥५॥
गउ सोमित्ति विसज्जिउ रामें । सरु पञ्चमउ मुक्कु णं कामें ॥६॥
गिरि-किक्किन्ध-णयरु मोहन्तउ । कामिणि जण-मण संखोहन्तउ ॥७॥
जिह जिह पउ सुग्गीवहों पावइ । तिह तिह जणु विहडप्फडु धावइ ॥८॥
ण गणइ कण्ठउ कडउ पडिच्छउ । णाइँ कुमारें मोहणु दिण्णउ ॥९॥

घत्ता

किक्किन्ध-णराहिव-मन्दिरु दिट्ठु पुरउ पडिहारु जिह ।
थिउ मोक्ख-बारें पडिकूलउ वायहों दुप्परिणामु जिह ॥१॥

चवालीसवीं सन्धि

सीतादेवीके वियोगमें रामका मन विसूर रहा था। उनकी आशा पूरी नहीं हो रही थी। एक भी क्षणका सहारा उन्हें नहीं मिल पा रहा था। इसलिए रामके आदेशसे लक्ष्मणको सुग्रीवके घर जाना पड़ा।

[१] जब कपट सुग्रीव युद्धमें बाणोंसे छत-विक्षत हो चुका और सात दिन भी व्यतीत हो गये, तब रामने लक्ष्मणसे कहा कि तुम शीघ्र जाकर सुग्रीवसे कहो। वह तो एकदम निश्चिन्त-सा जान पड़ता है। सभी दूसरेके काममें ढील करते हैं ? (उससे कहना) कि तुम जो (अपनी पत्नी) तारा सहित राज्यका भाग कर रहे हो और जो (हमने) तुम्हारा शत्रु काल (देवता) की भेंट चढ़ा दिया है। यदि तुम उस उपकारको थोड़ा भी जानते हो तो सीतादेवीका वृत्तान्त लाकर दो। इस प्रकार रामसे विसर्जित होने पर लक्ष्मण (सुग्रीवके पास) इस वेगसे गये मानो कामदेवने अपना पाँचवाँ बाण ही छोड़ा हो। वह किष्किन्ध पर्वत और नगरको क्षुब्ध करता तथा कामिनीजनोंके मनको क्षुब्ध बनाता हुआ जैसे जैसे सुग्रीवके घरके निकट पहुँच रहा था वैसे-वैसे जन-समूह हड़बड़ाकर दौड़ा। वह अपना कण्ठा कटक और गण्डिव्य नहीं देख पा रहा था। (उस समय जन-समूह) ऐसा जान पड़ रहा था मानो लक्ष्मणने सम्मोहन कर दिया हो। इतनेमें कुमार लक्ष्मणने किष्किन्धराज सुग्रीवके प्रतिहारको अपने सम्मुख इस प्रकार (स्थित) देखा मानो मोक्षके द्वारपर जीवका प्रतिकूल दुष्परिणाम ही स्थित हुआ हो ॥१-१०॥

[७] तब कुमारने उससे कहा कि तुम सुग्रीवके पास जाकर यह निवेदन करना कि जो जम्बूद्वीपके परमेश्वर हैं वह राम तो वनवासमें भटक रहे हैं और तुम निश्चिन्त होकर अपना राज्य कर रहे हो। जिस प्रकार रामने तुम्हारा अवसर साधा, उसी प्रकार अब तुम्हें उनका काम साधना चाहिए। हमने जिस तरह कपट सुग्रीवका हनन किया उसी तरह हम भी प्रत्युपकारकी तुमसे आशा रखते हैं। इस प्रकार कुमार लक्ष्मणने द्वारपालका जो कुछ संदेश दिया उसने उसे जाकर सुग्रीवसे निवेदित करते हुए कहा, 'देवदेव, समाप्तमें अत्यन्त अनिष्टकर कुमार लक्ष्मण द्वारपर खड़े हैं। वह रामकी आज्ञासे आये हैं। (वह ऐसे लगते हैं) मानो नररूपमें यम हों। भीतर आने दूँ उन्हें या नहीं। जाकर उनसे क्या कहूँ।' प्रतिहारके वचन सुनकर सुग्रीवने पहले उसका मुख देखा और तब कहा, "क्या कोई गाथाका लक्ष्मण (लक्षण) हमारे द्वारपर (कोई) हो आया है ॥१-६॥

[८] क्या लक्ष्मण (लक्षण) जो विशुद्ध लक्ष्य होता है। क्या वह लक्षण (लक्ष्मण) जो गयनिबद्ध होता है। क्या वह लक्षण जो प्राकृत काव्यमें होता है, क्या वह लक्षण जो व्याकरणमें होता है। क्या वह लक्षण जो छन्दशास्त्रमें निर्दिष्ट है। क्या वह लक्षण जो भरतकी गोष्ठीमें काम आता है। क्या वह लक्षण जो स्त्री-पुरुषोंके अंगोंमें होता है। क्या वह लक्षण जो अश्वों और गजोंमें होता है।" तब प्रतिहारने पुनः निवेदन किया "देव-देव इनमेंसे एक भी लक्षण नहीं है प्रत्युत वह लक्ष्मण है जो दशरथका पुत्र है। वह लक्ष्मण है जो शत्रुसमाजका संहार करनेवाला है। वह लक्ष्मण है जो निशाचरका नाशक है। वह लक्ष्मण है जो शम्बुक कुमारका

सो लक्खणु जो राम-सहायउ । सो लक्खणु जो सीयहेँ देवरु ॥८॥
सो लक्खणु जो णरवर-केसरि । सो लक्खणु जो खर-दूसण-अरि ॥९॥
दसरह-तणउ सुमित्तिहेँ जायउ । रामें सहुँ वण-वासहों आयउ ॥१०॥

घत्ता

पडुमिल्लउ देव पयत्तें आव ण कुप्पइ जिम-सलोउ ।
म पन्थें पइँ पेसेसइ भाभासुमीयहों तणॅण' ॥११॥

[४]

तं णिसुणेवि वयणु पडिवासहोँ । दिवसउ जिण्णु अद्दहम-सारहोँ ॥१॥
'एहु सो लक्खणु राम-कणिट्ठउ । जसु भासि हउँ सरणु पइट्ठउ' ॥२॥
तासु वि गुरु-वयणेंहिँ सम्भूअउ । परवइ जिणय गइन्दारूढउ ॥३॥
स-वसु स-चिण्हवासु स-कलत्तउ । चलणेहिँ पडिउ विसल्लुक-गत्तउ ॥४॥
पभणिउ अप्पुणु जिणभत्ति-रत्तउ । 'हउँ पाविट्ठु विरुद्धु अकिच्चयरु ॥५॥
तारा-वयण-सरेंहिँ जज्जरियउ । तुम्हारउ आउ मि वीसरियउ ॥६॥
अहोँ परमेसर पर-उवयारा । एक्क-वार मसु खमहि भडारा' ॥७॥
तं पिय-वयणेंहिँ विमउ पयासिउ । णरवइ लक्खणेण आसासिउ ॥८॥
'आमउ वयणु सुद्धु सीय गवेसहि । जइ विज्जाहर दस-दिसि पेसहि' ॥९॥

घत्ता

सोमित्तिहेँ वयणु सुणेप्पिणु सुहड-सहासेंहिँ परिचरिउ ।
तं सावरु समरहोँ कुहरु किक्किन्धाहिउ णीसरिउ ॥१० ॥

[५]

णराहिवो विसाहउ । पराइओ जिणालयं ॥१॥
थुओ तिलोय-सामिणो । अणन्त-सोक्ख-गामिणो ॥२॥

वधकर्ता है। यह लक्ष्मण है जो रामका सगा भाई है। यह लक्ष्मण है जो सीता देवीका देवर है। यह लक्ष्मण है जो श्रेष्ठ मनुष्योंमें श्रेष्ठ है। यह लक्ष्मण है जो खरदूषणका हत्यारा है। यह लक्ष्मण है जो सुमित्रासे उत्पन्न दशरथका पुत्र है और जो रामके साथ वनवासके लिए आया है। हे देव! प्रयत्नपूर्वक उसे मना कीजिए, जिससे वह कुपित न हो। और तुम्हें मारा सुग्रीव के पथपर न भेज दे" ॥१-११॥

[४] प्रतिहारके उन वचनोंको सुनकर कपिध्वज शिरोमणि सुग्रीव का हृदय विदीर्ण हो गया। (वह सोचने लगा) अरे, यह वह लक्ष्मण है [रामका अनुज] जिनकी शरणमें मैं गया था। यह विचारते ही वह वैसे ही सचेत हो गया जैसे गुरुके उपदेश वचनसे शिष्य सचेत हो जाता है। तब राजा सुग्रीव विनयरूपी हाथी पर चढ़कर, अपनी सेना-परिवार और स्त्रीके साथ आकर व्याकुल शरीर लक्ष्मणके सिर पर गिर पड़ा। दोनों हाथ जोड़कर उसने करुण स्वरमें कहा—"हे देव मैं बहुत ही पापात्मा धृष्ट और अकृतज्ञ हूँ। ताराके नेत्रबाणोंसे जर्जर होकर मैं आपका नाम तक भूल गया। अहा, परोपकारी परमेश्वर एक बार मुझे क्षमा कर दीजिए।" जब सुग्रीवने इतने प्रिय वचनोंमें विनय प्रकट की तो लक्ष्मणने उसे आश्वासन दिया और कहा, "वत्स, तुम्हें मैं अभय देता हूँ शीघ्र जाकर अब सीतादेवीकी खोज करो हरेक दिशामें विद्याधर भेज दो। लक्ष्मणके वचन सुनकर सहस सैनिकोंसे परिवृत सुग्रीव निकल पड़ा। मानो समुद्र ने ही अपना मर्यादा विस्मृत कर दी थी ॥१-१ ॥

[५] तब नराधिप सुग्रीव एक विशाल जिनालयमें पहुँचा। वहाँ उसने अनन्त सुखगामी जिन स्वामीकी स्तुति प्रारम्भ का

"आठ कर्मोंका दलन करनेवाले आपकी जय हो। आप कामका संग निवारण करनेवाले, प्रसिद्ध सिद्ध शासनमें रहनेवाले, मोहके घन तिमिरको नष्ट करनेवाले, कषाय और मायासे रहित त्रिलोक द्वारा पूज्य, आठ मदोंका मदन करनेवाले, तीन शल्योंकी छटाका उच्छेद करनेवाले हैं। इस प्रकार उसने विभूतियोंसे परिपूर्ण जिननाथकी खूब स्तुति करते हुए कहा, "हे महादेव देव जिन आपके पास न सुरा है, और न मत है, न भाति। न चाप है न त्रिशूल। न कंकाल माला है और न भयंकर दृष्टि। न गौरी है न गंगा। न चन्द्र है न सप। न पुत्र है न स्त्री। न इर्ष्या है और न चिंता। न काम है और न क्रोध। न लोभ है न मोह। न मान है और न माया। और न साधारण छाया ही है। इस प्रकार जिनवर स्वामीको प्रणाम करके सुगतिगामी सुग्रीवने यह प्रतिज्ञा की कि यदि मैं सीतादेवीका वृत्तान्त न लाऊँ और जिनको नमन न करूँ तो मेरी गति सन्यास की हो (अर्थात् मैं सन्यास ग्रहण कर लूँगा ॥१-१२॥

[६] यह कहकर उसने अपनी अनिर्दिष्ट वाहनवाली विद्याधरसेनाको पुकारा और उसे यह आदेश दिया कि जहाँ पता लगे वहाँ जाकर सीता देवीकी खोज करो। इसपर अंग और अंगद उत्तर दशाकी ओर गये। गवय और गवाक्ष आये पूर्वकी ओर। नल कुंद इन्द्र और नील आये पश्चिमकी ओर गये। स्वयं सुग्रीव अपनी सेना लेकर दक्षिणकी ओर गया। प्रसन्न मन जाम्बवत भी उसके साथ था। आदरणीय वे दोनों विमानमें बैठकर चल पड़े। और पल भरमें जम्बू द्वीप पहुँच गये। वहाँ पर उन्होंने विद्याधर रत्नकेशीका ध्वज देखा। कंपित चपलता और विपरीत दिशामें मुड़ता हुआ शीघ्र दण्डवाला और पवनमें आंदो-

छिन्न वह ऐसा लगता था मानो किसीका यशःपुंज ही समुद्रमें प्रक्षिप्त कर दिया गया हो। नेत्रोंको सुहावना लगनेवाला हिलता हुआ वह ध्वज उसे ऐसा प्रतीत हुआ मानो सीता देवीका हाथ ही उसे यह पुकार रहा हो कि शीघ्र आओ शीघ्र आओ ॥१-६॥

[७] इतनेमें विद्याधर रत्नकेशीको भी दूरसे आते हुए सुग्रीवका ध्वज-चिह्न दिखाई दे गया। वह अपने मनमें सोचने लगा कि "हा जिसके साथ मैं अभी-अभी युद्धमें लड़ा था त्रिभुवन-सन्तापदायक वही रावण शायद फिरसे लौट आया है। अब मैं कहाँ भागूँ किसकी शरणमें जाऊँ। इससे मेरे प्राण बचना अब कठिन है।" इस तरह उसने मनमें यह सोचकर बड़े कष्टसे अपने आपको समझाया कि यदि यह रावण ही आ रहा है तो उसके ध्वजमें वानरका चिह्न कैसे हो सकता है। नहीं नहीं, यह तो किष्किन्ध नरेश है। ठीक इसी समय सुग्रीव वहाँ आ पहुँचा। मानो स्वर्गसे इन्द्र ही आ गया हो। उसने कहा "अरे रत्नकेशी क्या तुम भूल गये। यहाँ एकाकी कैसे पड़े हुए हो"। सुग्रीवके यह वचन सुनकर विद्याधर रत्नकेशी मारे हर्षके फूला नहीं समाया वैसे ही जैसे नव-पावसके जलसे सिक्त होनेपर भी विन्ध्याचल आह्लादनसे नहीं अघाता ॥१-७॥

[८] तब भामण्डलका अनुचर अतुल यशी विद्याधर रत्नकेशीने सुग्रीवको बताया कि जब मैं अपने स्वामीकी सेवामें जा रहा था तो मुझे गगनांगनमें एक विमान दिखाई दिया। उसमें सीता देवीका आक्रन्दन सुनाई पड़ा। बस मैं रावणको तृणवत् भी न समझकर, उससे भिड़ गया। उसने अपने श्रेष्ठ खड्ग चन्द्रहाससे हाथोंमें आहत कर दिया। तब मैं उससे आहत पहाड़की भाँति फूट-फाट हो गया। बड़ी कठिनाईसे अब मुझे कुछ चेतना आई

तो उसने मेरी विद्या छेदकर मुझे यहाँ फेंक दिया। जन्मांधकी तरह मैं अब दिशा भूल गया हूँ और इसीलिए यहाँ अकेला पड़ा हूँ।" इस प्रकार सीता देवीके अपहरणकी बात सुनकर महागुणी सुग्रीवने बार-बार रत्नकेशीका आलिंगन किया तथा खूब संतुष्ट होकर उसे मनचाही आकाशगामिनी विद्या दे दी। फिर सुग्रीव रत्नकेशीको वहाँ ले गया जहाँ दुमन राम थे। इस प्रकार वह मानो बलपूर्वक रावणका पराभव हरण कर लाया हो ॥१-६॥

[६] आकर, विद्याधर-कुल-भुवन-प्रदीप सुग्रीवने रामका अभिनन्दन करते हुए निवेदन किया "देव-देव! अब आपने दुःख रूपी महासरिताका संतरण कर लिया है। यह सीता देवीका पूरा पूरा वृत्तान्त जानता है।" उसके वचन सुनकर राम कहकहा लगाकर विभ्रमपूर्वक खूब हँसे, और फिर उन्होंने कहा, 'अरे वत्स-वत्स तुम मुझे आलिंगन दो। आज तुमने सचमुच मेरे जीवनको आश्वासन दिया है।' यह कहकर रामने उसका सर्वांग आलिंगन कर लिया और फिर पूछा "कहो-कहो किसने सीता देवीका अपहरण किया है। तुमने उसे मृत देखा या जीवित।" यह सुनकर विद्याधर इस प्रकार बोला मानो जिनेन्द्रके सम्मुख गणधर ही बोल रहा हो कि "हे देव-देव! वह करुण क्रन्दन करती हुई 'हा राम' 'हा लक्ष्मण' कह रही थीं। रावण, मेरी विद्याको छेदकर उन्हें वैसे ही ले गया जैसे गरुड़ नागिनको या सिंह हरिणीको पकड़कर ले जाता है ॥१-६॥

[७] परन्तु उस भयभीत कठोर करुण कालमें भी किसी तरह सीताका शील खण्डित नहीं हुआ था। परपुरुष उसका चित्त नहीं पा सके वैसे ही जैसे मूर्ख व्याकरणका भेद नहीं कर पाते।" विद्याधरका कथन सुनकर रामने उसे कण्ठा, कटक और कटिसूत्र

दिया। जो लोग सीताको खोजनेके लिए गये थे वे भी इसी अवसरपर लौटकर आ गये। तब रामने उनसे पूछा, "अरे वर वीर प्रचंड मल नील और गवय-गवाक्ष, बताओ यह लंका नगरी यहाँसे कितनी दूर है।" इसपर जाम्बवंतने रामको यह उत्तर दिया कि "लवण समुद्रके घेरेमें राक्षस द्वीप है जो सात सौ इक्कीस योजनका है। यह बात जिनेन्द्रने केवल रामसे बताई है। उस लंका द्वीपमें त्रिकूट नामका पर्वत है जो नौ योजन ऊँचा और पचास योजन विस्तृत है। उसपर पचीस योजनकी लंका नगरी है। रावण उसका एक मात्र निरंकुश राजा है। वह दूसरे समुद्रोंसे घिरी हुई है। एक तो सिंह दमनेमें वैसे ही भयंकर होता है दूसरे वह पक्खरित ? पहल हो तो ? ॥१–१॥

[११] जिस रावणसे तीनों लोक आशंका करते हैं उससे कौन लड़ सकता है। अतः हे राघव इस आलापसे क्या और सीता देवीके प्रति प्रलापसे क्या। मेरी पीन स्तनोंवाली और रूपमें अत्यंत सुन्दर तेरह कन्याएँ स्वीकार कर लें। उनके नाम हैं। गुणवती, हृदयम, हृदयावलि, स्वरवती, पद्मावती रत्नावली, चन्द्रकान्ता श्रीकान्ता अनुद्धरा, चारुदर्शी, मनवाहिनी और सुन्दरी। जिनवरकी साक्षी लेकर आप इनसे विवाह कर लें।" यह सुनकर रामने कहा कि इनमेंसे मुझे एक भी नहीं रुचती। यदि रम्भा या तिलोत्तमा भी हो तो भी सीताकी तुलनामें मर लिए कुछ नहीं। रामके इन वचनोंको सुनकर किष्किन्धानरेश सुग्रीवने हँसते हुए निवेदन किया 'अरे तुम तो उस अनुरक्त (प्रेमी) की कहानी कह रहे हो जो भोजन छोड़कर लौंद पसन्द करता है ॥१–८॥

[१२] तुम तो बार बार महाजनोंकी तरह बोल रहे हो। तो क्या तुमने यह लोक-कहावत नहीं सुनी कि जो बात एक

अप्सरा नहीं कर सकती क्या वह एक मनुष्यनी कर सकती है। यदि तुम्हारा सन्ताप और तृप्ति सीता द्वारा ही संभव है तो हमारी बात मानो। जब तक रावण एक एक करके तेरह वर्ष निकालता है तब तक तुम भी मेरी एक एक कन्यासे एक एक वर्ष निकालो। इस प्रकार तुम्हारे तेरह वर्ष देवेन्द्रकी तरह भोग करते हुए व्यतीत हो जायेंगे। उसके बाद, फिर कुछ तो भी होगा।" यह सुनकर रामने उत्तर दिया—"मैं तो शत्रुको अपने हाथ मारूँगा और उस दरूपणके पथपर पहुँचाऊँगा। श्रीका पराभव सबसे भारी होता है। क्या स्वयं तुमने इसका अनुभव नहीं किया। भाग्यके फलोदयसे जो मेरा, यशरूपी वस्त्र, अकीर्ति और कलङ्कके पङ्कमलसे मैला हो गया है उसे मैं रावणरूपी चट्टानपर (पछाड़कर) साफ करूँगा' ॥१–६॥

[१२] यह सुनकर सुग्रीव बोला "अरे रावणके साथ कैसी लड़ाई? एक हिरन है तो दूसरा गेरावत। एक पाहन है तो दूसरा कुलपर्वत। एक सरोवर है तो दूसरा समुद्र है। एक साँप है तो दूसरा गरुड़ है। एक मनुष्य है तो दूसरा विद्याधर। तुममें और उसमें बहुत बड़ा अन्तर है। उसने दुनियामें अपने यशका डंका बजाया है। अपने हाथसे कैलाश पर्वतको उठा लिया है। जिसने महायुद्धमें इन्द्र यम वैश्रवण अग्नि और वरुणको भी पराजित कर दिया है। शास्त्रमें जिसने पवनको भी जीत लिया मनुष्यके द्वारा उसका ग्रहण कैसे हो सकता है?" उसके वचनसे लक्ष्मण ऐसे कुपित हो उठे माना शनिश्चर ही अपने मनमें रुठ गया हो। उसने कहा—"अंग अंगद नील अपना भुजाओंको मसलकर पैठ रहो। जाओ। रावणके जीवनका मद करनेवाला लक्ष्मण मैं स्वयं ही प्रधान हूँ ॥१–९॥

[१४] तब इन वचनोंको सुनकर जाम्बवन्तने सुग्रीवसे निवेदन किया कि शत्रुपक्षके संहारकर्त्ता इसे आप मामूली आदमी न समझें। यह यों कहते हैं कर दिखाते हैं। जिसने सूर्यहास खड्ग ग्रहण किया और जिसने शम्बूक कुमारके प्राण लिये, जिसने खर-दूषणके कुलका नाश कर दिया, युद्धमें प्रहार करते हुए उसे कौन पकड़ सकता है? रावणके लिए मानो वह यमकाल ही अब तरित हुआ है। परमागम आज प्रमाणित हो गया है। केवल ज्ञानियोंने बहुत पहले यह आदेश कर दिया था कि जो कोटि शिलाका संचालन वैसे ही कर लेगा जैसे कि कोई अपनी स्त्रीको बाँहोंमें भरकर आलिंगन कर लेता है, वही रावणका प्रतिद्वन्द्वी और विद्याधरोंकी सेनाका स्वामी होगा। जाम्बवन्तके इन वचनोंको सुनकर कुमार लक्ष्मणने अपना भुजकमल ठोककर कहा, "अरे एक पाषाणखण्डसे क्या, कहो तो सागरसहित धरती ही उठा लूँ" ॥१-९॥

[१५] यह वचन सुनकर, सन्तुष्ट होकर बालिके छोटे भाई सुग्रीवने कहा "हे देव! तुम जो कहते हो यदि वह सच है, तो इस बातको और सच करके दिखा दो तो मैं हृदयसे तुम्हारा अनुचर हो जाऊँगा। वैसे ही जैसे सूर्यका अग्नि या प्रतिशब्दका ध्वज होता है?" यह सुनकर युद्धमें दुर्शील नल और नासन सुभावको समझाया कि जिसने रणमें खरदूषणको आहत कर दिया विश्वास करो वह कोटिशिला भी उठा लेगा। यह कहकर विद्याधर चल पड़े। मानो नव पावसमें मेघ ही चल पड़े हों। घंटा ध्वनि और झंकारसे प्रमुदित यानों पर राम लक्ष्मणको बैठाकर वे कोटिशिलाके प्रदेशमें पहुँचे वैसे ही जैसे सिद्ध सिद्धिका ध्यान करते हुए यहाँ पहुँचते हैं। वह शिला उन्हें ऐसी लगी मानो

हमेशा विहार करनेवाले राम-लक्ष्मणसे वनवासमें विमुख होकर सीता ही इस समय शिलाके रूपमें सामने स्थित है ॥१-९॥

[१६] जिस शिलासे करोड़ों मुनि शाश्वत सुख-स्थान मोक्षको गये थे, ऐसी उस शिलाकी उन्होंने परिक्रमा की और गन्ध, धूप, नैवेद्य और पुष्पोंसे उसकी अर्चा की, फिर शंख और पटह बजाकर कलकल शब्द किया और चार मंगलोंका इस प्रकार उच्चारण किया—"जिसके दुन्दुभि अशोक और भामण्डल हैं वे अरहंत देव मंगल करें। जो निष्कल तीनों लोकोंके अग्रभागमें स्थित हैं वे सिद्धवर तुम्हें मंगल दें। जिन्होंने कलिमलकी तरह कामको भी भग्न कर दिया है, वे परमसाधु तुम्हें मंगल दें, जो षड् जीव निकायोंके प्रति ममता रखता है, वह दया-धर्म (जिनधर्म) तुम्हें मंगल दे," इस प्रकार सुमंगलोंका उच्चारणकर और सिद्धोंको नमस्कारकर, जय-जय शब्दोंके साथ उन्होंने कोटिशिला एस सचालित कर दी मानो रावणकी शक्ति ही उखाड़ दी हो। हाथसे उस शिलाको उखाड़ लिया मानो रावणके हृदयकी गाँठ ही तोड़ दी हो। तब सुरवधूने भी सन्तुष्ट होकर जयश्री पानेवाले लक्ष्मणके ऊपर अपने हाथोंसे पुष्पोंकी वर्षा की ॥१-११॥

•

पैंतालीसवीं सन्धि

कोटिशिलाके चलित होने पर रावणका जीवन भी डोल उठा। देवोंने आकाशमें और मनुष्योंने धरतीपर आनन्दकी दुंदुभि बजाई।

[१] विद्याधरोंने हाथ जोड़कर रामका अभिनन्दन किया। यात्राओंका समूह विरक्तमनसे जिन-मन्दिरोंकी परिक्रमा और

अम्भा-भक्ति करके किष्किन्धा नगरी आधे पलमें ही चला आया। राम और लक्ष्मण यद्यपि इसके साहसका प्रदर्शन कर चुके थे फिर भी सुग्रीवके मनमें सन्देह बना रहा। उसने कहा, "अहो जाम्बवन्त बताओ महान चरित्र किसका है, रावणका या लक्ष्मणका, एकने प्रचण्ड कैलाश पर्वत उठाया था दूसरेने कोटिशिलाको उठा लिया। बताओ दोनोंमें साहसी कौन है? कौन शुभ गतिवाला है और कौन संसारगामी है?" तब जाम्बवन्तने कहा, "मनमें मूर्ख मत बनो, क्या प्रभु तुम्हें आज भी सन्देह है। सबकी अपेक्षा परमागम (जिनागम) सबसे भी बड़ा है। हे राजन, क्या सैकड़ों जन्मोंमें भी मुनिवर्गोंका कहा झूठ हो सकता है" ॥१-४॥

[ ] यह सुनकर हर्षित शरीर सुग्रीवके मनकी भ्रान्ति दूर हो गई। वैसे ही जैसे जिन वचनको सुननेसे मिथ्यादृष्टिकी भ्रान्ति मिट जाती है। आगमके बलपर इस प्रकार ज्ञान प्राप्त हो जाने पर सुग्रीवने अपनी सेनाको अवलोकन करते हुए पूछा "क्या आप लोगोंके बीचमें ऐसा कोई वीर है, जो इस दुर्ग मार्गको अपने कन्धेपर उठा सकता हो जो मुख उज्ज्वल कर सकता हो। रामको रामको आलिंगन दिला सकता हो जो इस दुर्ग महानदीसे पार ला सकता हो, और जाकर सीता देवीको ला सकता हो"। यह सुनकर जाम्बवन्त बोला 'हे देव, हनुमानको छोड़कर और कौन जा सकता है। यह मैं नहीं जानता कि वह भी आजकल हमसे रुष्ट क्यों है शायद खरदूषण और शम्बूक मार जो दिये गये हैं। इस रावणका उद्धार बीरगमध्य हनुमान केवल रावणसे ही मिलेगा। जो जानते हो तो उस लानेका उपाय सोचो। क्योंकि हनुमानके मिलनेसे अंगद भी मिल जायगा। राम और रावणकी सेनामें

एक भी बलवान् नहीं दिखाई देता। हाँ जयलक्ष्मीके साथ विजय उसीकी होगी जिसके पक्षमें हनुमान् होगा" ॥१-२ ॥

[३] तब सुग्रीवने जाम्बवन्तसे कहा, "तुम्हें छोड़कर और कौन बुद्धिमान् है, ऐसा कोई मन्त्र करो जिससे वह हमारे पक्षमें मिल जाय, गुणपूर्ण वचनोंसे जाकर हनुमानसे कहो कि इस समय रूठना ठीक नहीं, आप प्रसन्न हों, खरदूषण और शम्बुक कुमार अपने दुश्चरित्रसे ही मरणको प्राप्त हुए हैं। इसमें न तो रामका दोष है और न लक्ष्मणका। जैसे उनको रोष हुआ वैसे ही सबको रोष होता है, और यह उससे भी कहना कि क्या अभी तक तुमने चन्द्रनखाके चरित्र नहीं सुने, लक्ष्मणके द्वारा ठुकराई जाकर विरहाकुल उस दुष्टाने खरदूषणको मरवा दिया।" यह वचन सुनकर और आनन्दमग्न होकर दूतने विमानमें बैठकर प्रस्थान किया। पुलकसे विशिष्ट शरीर वह पलमात्रमें ही श्रीनगर जा पहुँचा। पवनपुत्र हनुमानका यह सुन्दर नगर हनूरुह द्वीपमें था वह ऐसा था माना किसी कारणसे स्वर्गका खण्ड ही धरतीपर अवतीर्ण हो ॥१-१०॥

[४] उस श्रीनगरमें पहुँचकर, लक्ष्मीभुक्तिको जो जो व्यवहार अच्छा लगा, वह उसे देखने लगा। पहले उसे पृथुकुल बाड़ी मिली। फिर फोफल अम्यमूक पतरल, जातिफल ? करहाटक, पूणक, चित्रक, सुन्दर कंचुक गाम हरड गुड सर पैठन बहुविध अत्यन्त पका भुजंग, (विट) अनुरक्त प्रिय अभवेरा कन्याओंका सविकार यौवन हरिकेलका सुन्दर कान्तिवाला कपड़ा, विख्यात बड़ा ममक वैडूर्यमणि वज्र और सिंघल, नयपाल ?? कस्तूरिका परिमल, मोताहार निकर संग्राम अरबटार, सुरग कंकालक सुन्दर वासपूर्ण पड़नारी ? सुभाषिणी वाणी पंडुरवारो और

कण्णी-केरउ णयरु विसिद्धउ । चन्दउ केउ विपक्खेंहिं सिद्धउ ॥१०॥
लण्णु इन्दु-णयरहु गुणियइ । सुव्वावइउ रोउ मुणियइ ॥११॥
एम णयरु गउ णिवचन्दन्तउ । रावणु पवण-सुयहों सपत्तउ ॥१२॥

घत्ता

सो पडिहारिएँ कम्मयएँ सुग्गीव-सुउ ण णिवारिउ ।
णाइँ मइल्लएँ कम्मयएँ णिय-कम्पणाउ पइसारिउ ॥१३॥

[५]

दिट्ठु तेण पुरहों वि समीरण-णन्दणा ।
सिसिर कालें विकसयरु व कमलाणन्दणो ॥१॥

सिरिसइल णरेण णिहालियउ । णं करि करिणिहिं परिमालियउ ॥२॥
एक्केत्तहें एक णिविट्ठ तिय । वर कंचणविहत्थी पाण-पिय ॥३॥
णामेणाणङ्गकुसुम सुसुय । सस सम्बुकुमारहों खरहों सुय ॥४॥
अण्णेक्केत्तहें अण्णेक्क तिय । वर-कमल-विहत्थी णाइँ सिय ॥५॥
सा पउमराय अमरइयहों । सुग्गीवहों सुय सस अङ्गयहों ॥६॥
तिहिं पासेंहिं वे वि पहुत्तयउ । कुवलय दल दीहर-लोयणउ ॥ ॥
रेहइ सुन्दरु मज्झत्थु थिउ । तिहिं सञ्झहिं परिमिउ दिवसु जिह ॥८॥
पच्चन्तरें गुन्छु ण रविणयउ । हणुवन्तहों दूए अक्खियउ ॥९॥

घत्ता

'केसु कुसलु, कहाणु कउ सुग्गीवहाय-धीरहुँ ।
कुसलु मरणु विणासु कउ खर-दूसण-सम्बुकुमारहुँ' ॥९ ॥

[६]

कहिउ सव्वु तं लक्खण-राम-कहाणउ ।
दण्डयारु मुणि-कोडि-सिला-अवसाणउ ॥१॥

तं सुणेंवि अणङ्गकुसुम दरिय । पउमरायाणुराग भरिय ॥२॥

कोंचीका सुन्दर विशिष्ट नगर उसने देखा जहाँ पर विहग आग पीनी और नेत्र बन्द किया गये थे और भी जहाँ ऐन्द्र व्याकरणका विचार किया जा रहा था, "भूषा वल्क गय" हो रहा था। इस प्रकारके नगरको देखता हुआ वह गया। और हनुमानके राज भवनमें पहुँचा। अथवा प्रतिहारोंने सुग्रीवके दूतको भीतर जानेसे नहीं रोका मानो नदियोंने अपना जल-प्रवाह ही समुद्रमें प्रविष्ट होने दिया हो ॥१-१६॥

[४] उसने भी दूरसे समीर-पुत्र हनुमानको देखा। मानो शिशिरकालमें नयनानन्दकारी दिवाकरको ही देखा हो। उसने हनुमानको ऐसे देखा मानो हाथी हथिनियोंसे घिरा हुआ बैठा हो। एक ओर एक स्त्री बैठी थी। प्राणप्रिय उसके हाथमें वीणा थी। सुबाहु वाली उसका नाम अनंगकुसुम था वह शम्बूक कुमारकी बहन और खरकी लड़की थी। दूसरी ओर एक और स्त्री बैठी थी जो अपने सुन्दर करकमलोंसे लक्ष्मीकी तरह जान पड़ती थी। वह अभंग सुग्रीवकी लड़की और अंगदकी बहन पद्मरागा थी। उन दोनोंके पास ही सुन्दर अंगोंवाला कुवलयदलकी तरह दीर्घनयन बीचमें बैठा हुआ हनुमान ऐसा मालूम होता था मानो दोनों सन्ध्याओंके बीचमें परिमित दिन हो। इसी अन्तरमें दूतने कोई बात छिपा नहीं रक्खी हनुमानसे सब कुछ कह दिया। उसने वीर सुग्रीव अंग और अंगदके कुशल कल्याण और उसका (दूतका) बताया और खरदूषण तथा शम्बुककुमारका अनुराग अन्याय विनाश और वध बताया ॥१-१०॥

[६] उसने राम-लक्ष्मणकी सब कहानी उन्हें सुना दी कि किस प्रकार दण्डकवनमें उन्होंने कोटिशिलाको उठा लिया। यह सुनकर अनंगकुसुम डर गई परन्तु पद्मरागा अनुरागसे भर

उठी। एक पर मानो वज्र ही टूट पड़ा हो तो दूसरे पर पुलक चढ़ आया। एकके मनमें प्रलाप उठा तो दूसरेके मनमें बधाईकी बात आई। एकका शरीर निश्चेतन हो गया तो दूसरीकी समस्त चेतना चली गई। एकका हृदय पल-पलमें टूटने लगा, तो दूसरी पल-पलमें श्वास लेने लगी। एकका मुखकमल कुम्हला गया, दूसरीका अधरदल हँस उठा। एककी आँखोंमें पानी भर आया, दूसरी हर्षसे देख रही थी। एकका स्वर संगीतमय हो रहा था और दूसरी करुण विलाप कर रही थी। एकका गालकुल विमन हो उठा दूसरीका पूर्णचन्द्रकी तरह चढ़ने लगा। पवनपुत्र हनुमानके शरीरका आधा भाग आँसुओंसे आर्द्र हो रहा था और आधा हर्षसे पुलकित ॥ १११ ॥

[७] खरकी लड़की बार-बार प्रदीप्त होकर मूर्छित हो गई, चन्दनका लेप करने पर उसे चेतना आई। वह विलाप करती हुई ऐसी लगी मानो छिन्नकुसुम चन्दनकी लता ही हो। हे तात तुम्हें किसने मार दिया। विद्याधर होकर भी तुम्हारा घात हो गया। शूरोंके भी शूर अकलंक यशस्वी विद्याधरोंके कुलरूपी आकाशके चन्द्र हे भाई हे सहोदर तुमसे बात करती हूँ मैं तुम्हें विलाप करती हुई को तुमने भी क्यों छोड़ दिया। यह सुनकर शोक भय और शास्त्रमें पारङ्गत कुशल पण्डितोंने कहा, 'क्या तुमने जगमें प्रसिद्ध जिनागममें यह नहीं सुना कि जो जीव उत्पन्न होता है, उसका मरण भी अवश्य होता है। जलबिन्दुकी तरह चपलतम पड़ा हुआ जीव जो कुछ देखता है यही बहुत साहसकी बात है उसे कोई सहारा नहीं बाँध पाता, आता और जाता है, वैसे ही अस

रहटयन्त्रमें लगी हुई नई घड़ियाँ आती जाती रहती हैं। तुम अकारण क्यों रोती हो। हे माँ अपनेको धीरज दो, हमारा तुम्हारा और दूसरोंका भी किसी-न-किसी दिन प्रयाण अवश्य होगा ॥१७॥

[८] परिवारने भी सबकी पुत्रीको धीरज बँधाया और लोकाचारके अनुसार, मृतवस्त्र भी उससे दिलवाया। इस तरहके कलकल ध्वनि करनेपर शत्रुसंहारक पवनका पुत्र हनुमान उठा लम्बी बाहुओंसे युक्त ?, गजकी तरह निरंकुश राजाके ऊपर सिंह की तरह क्रुद्ध, फड़कते हुए नथुनोंवाला वह देखनेमें शनिकी तरह था। सूर्यकी तरह दुर्निवार, यमकी तरह निष्ठुरदृष्टि मात्यकी तरह क्रुद्ध उठा हुआ अष्टमीके चन्द्रकी तरह वक्र, सामर्मे वृहस्पति की तरह क्रूरकर्मा अहिकी तरह था वह। उसने घोषणा की "मुझ हनुमानके क्रुद्ध होनेपर राम और लक्ष्मणका जीवन कैसे (सम्भव है) जीये ही गोत्र मैं उन्हें खरदूषण मामा (ससुर) के पथपर भेज दूँगा ?" ॥१९॥

[९] तब लक्ष्मीभुक्ति दूतने अत्यन्त श्रुतिमधुर वाणीमें कहा "यह सब शम्बुकुमारकी करनी किया है। एक बार अनंग-कुसुमकी माँ विद्याधरी चन्द्रनखा एक दिन उपवनमें पहुँची। रावणकी बहन उसका मन वहाँ अपने पुत्र वियोगके दुःखको भुलाकर कुमार लक्ष्मणपर रीझ गया अपना दिव्यरूप दिखाते हुए उसने कहा 'मेरी रक्षा करो" परन्तु उन महापुरुषोंने उसकी

उपेक्षा कर दी तब विरहसे विह्वल होकर उस दुष्टाने अपने स्तन विदीर्ण कर लिये और गर्जती-विसूरती हुई खरदूषणके पास पहुँची। वे दोनों भी तत्काल कुपित होकर, चन्द्र-सूर्यकी तरह प्रकट हुए। व दोनों राम और लक्ष्मणसे उसी प्रकार भिड़ जिस प्रकार हरिणोंका झुण्ड सिंहसे भिड़ता है। लक्ष्मणके तीरोंसे आहत होकर वे दोनों कटे पेड़की तरह गिर पड़े। इधर रणमें अविचल रावणने छलसे सीताका हरण कर लिया। तब वहाँसे राम और लक्ष्मण विराधितके नगरको चले गये। ठीक इसी अवसरपर अंगदके पिता सुग्रीव रामसे मिले। तब रामने शीघ्र ही कपटी सुग्रीवको भी मार डाला। फिर उन्होंने उस कोटिशिलाको उठाया कि जिसके विषयमें केवलियोंने भविष्यवाणी की थी। अतः स्पष्ट है कि हमारी जय और रावणकी क्षय राम-लक्ष्मणके पास है ॥१-१६॥

[१०] जब दूतने लक्ष्मणके सब गुणोंका कीर्तन किया तो हनुमान लज्जित होकर मुख नीचा करके रह गया। और जो उसने कोटिशिलाका उद्धार तथा मायासुग्रीवका मरण सुना तो वह पुलकित हो उठा। और वह नटकी तरह रसभावोंसे भरकर नाचने लगा। उसने सुर-सुन्दरियोंसे इष्ट लक्ष्मणके कुल-नामकी प्रशंसा की। राम ही वह आठवें नारायण हैं जो रावणके लिए अष्टमीके चन्द्रकी तरह वक्र हैं। माया सुग्रीवका जिसने वध किया उसे ही आठवाँ नारायण कहा गया है। हनुमानके मनकी बात जानकर दूतका हृदय अभिनन्दनसे भर आया। माथा नवाकर, निराकुल होकर उसने कहा "देव सुग्रीवने आपका स्मरण किया है। वह आपके गुणरूपी जलके प्यासे बैठे हैं उन्हींके कहनेपर

मैं यहाँ आया हूँ आपके बिना सुग्रीवकी सेना उसी तरह नहीं सोहती जैसे पुंश्चलीका उद्धग्ना हुआ हृदय आचारके बिना नहीं सोहता। और जैसे धर्म-विहीन यौवन नहीं सोहता'॥१ १॥

[११] तब पुलकितबाहु पवनपुत्र अपने विमान और सेनाके साथ चल पड़ा। उसके चलते ही सैन्यदल भी चला। मानो पावसमें सजल मेघसमूह ही उमड़ पड़ा हो, या ऋषभ भगवानका समवशरण हो या केवलज्ञानके उत्पन्न होनेके समय देवागम हो रहा हो या तारामण्डल उदित हुआ हो या नभमें मायामयी रचना हो। हनुमानका आनन्दघोष और कुतूहल-जनक तूर्य सुनकर कपिध्वजियोंकी सेनामें आनन्द फैल गया, मानो मेघके गरजनेपर मयूर सन्तुष्ट हो उठा हो। राजा सुग्रीवने आगे होकर, किष्किन्धनगरके बाजारकी शोभा करवाई। तोरण बाँधे गये घर-घरमें मिथुन तैयार होने लगे। घर-घरमें सुन्दरियाँ रंग बिरंगे सुन्दर-सुन्दर (वस्त्र) पहनने लगीं। शीघ्र ही सभी लोग सज धजकर और हाथोंमें अर्घ लेकर सामने निकल आये। जाम्बवन्त नल नील और अंग तथा अंगदने आते हुए हनुमानका इस तरह जय-जयकार किया, मानो ज्ञान दर्शन और चारित्र्य ही सिद्धके मार्गमें प्रविष्ट किया हो॥१ १२॥

[१२] नगरमें प्रवेश करते हुए हनुमानने घर-घरमें निमल तार वाले मणि और सुवर्णके तोरणोंसे सजे द्वार देखे। नगरमें उसने देखा कि चन्दनसे चर्चित और भीसल (कहीं) म मर, केशर कस्तूरी कपूर, अगरगन्ध सिल्हय ?? और सिन्दूरस

कत्थइ कत्थूरियउँ कणिक्कउ । जं सिरखण्डि ठियउ पिय-मुक्कउ ॥४॥
णा-कम्पुअकाउ णउ मिट्ठउ । णं पर-वेसउ बाहिर मिट्ठउ ॥५॥
कत्थइ पुणु तम्बोलिय-सत्थउ । णं मुणिवर-मईउ समत्थउ ॥६॥
कत्थइ सुर-महिहर बहु-कत्थउ । जम सुरसुन्दरि समत्थउ ॥ ॥
कत्थइ पडियइँ पासा-जूअइँ । महुयरइँ पेक्खणइँ व हूअइँ ॥८॥
मुणिवर इव जिण-वत्थु समत्तइँ । वम्मिम इव सु-दाम समाणत्तइँ ॥९॥
कत्थइ वर-माकाहर सत्थउ । णं वासरण-भवउ सुकत्थउ ॥१०॥
कत्थइ कणयइँ निम्मल-तारइँ । सस-पुण्ण-वयणइँ व सु-तारइँ ॥११॥
कत्थइ गुप्पइँ तेण निमीसइँ । णाइँ कुमित्तत्तणइँ असरिसइँ ॥१२॥
कत्थइँ रम्मवण्णि पर-माणइँ । णं जम-दूआ आउ-पमाणइँ ॥१३॥
कत्थइ कामिणीउ मय-मत्तउ । णं रिद्द-बहुसउ अविय-कालत्तउ ॥१४॥
एम असेसु णयरु वण्णन्तउ । सोमित्ति राहवहिं चरन्तउ ॥१५॥
कोक्कमि पाडु सर्मतरम-कम्पणु । जहिँ रक्खइ सुग्गीउ कम्पणु ॥१६॥

घत्ता

रामहोँ हरिहिँ कइदयहोँ दरिसन्तु कण्णजण्णि-सणउ ।
कव्वहोँ जमहोँ सणिच्छरहोँ णं मिलिउ कयन्तु चउत्थउ ॥१७॥

[११]

राहवइ वइसारिउ सिय-अद्धासणे ।
मुणिवरो व थिउ मिहुणु जिणवर-सासणे ॥१॥

भक्षित, तरह-तरहके धड़ रखे हैं। कहीं पर, भोजन बनानेवाली स्त्रियोंका 'कनकन' शब्द हो रहा था मानो प्रियसे मुक्त स्त्री ही कुनकुना रही हो, कहीं पर अत्यन्त साफ रंगकी मिठाई थी, जो मानो वेश्याकी तरह बाहरस मीठी थी। कहीं पर पानवालोंकी वीथी थी मानो मुनिवरोंकी मध्यस्थ बुद्धि ही हो अथवा बहुअर्थों से भरी हुई देवमहिला थी जो लोगोंका मुख उज्ज्वल करनेमें समर्थ थी। कहींपर जुएके पासे फेंके जा रहे थे, कहीं पर नृत्यगीत और नृत्य हो रहे थे जो मुनिवरकी तरह जिन (जिनेन्द्र और जीत) का नाम ले रहे थे, और जो वन्दीजनकी भाँति—मुन्दाय [मुदान और दाँव] माँग रहे थे। कहीं पर स्वच्छ सफेद नमक रखा था। जो मूर्ख और दुष्ट मनुष्योंके वचनोंकी तरह अत्यन्त खारा था। कहीं पर उत्तम मालाकारकी वीथी थी जो व्याकरण और कथाकी तरह सुसूत्रित [गुथी हुई सूत्रोंसे सहित और कथासूत्रोंसे गुम्फित] थी। कहीं पर ठेठ मिश्रित घृत इस प्रकार रखा था मानो अपमान दुर्गन्धता ही हो। कहीं पर मनुष्योंके मान ?? एम जान पड़ते थे मानो आयु प्रमाणित करनेवाले, यमदूत हों। कहीं पर मद्यभरी कामिनियाँ ऐसी प्रतीत हो रही थीं मानो रत्नमहुल [मद्यकी रत्न-कुप्पियाँ] वाली ही हों। इस प्रकार समस्त नगरका अवलोकन करता हुआ और मोतियोंकी रंगावलिका चूर-चूर करता हुआ पवन-पुत्र हनुमान लीलापूर्वक वहाँ प्रविष्ट हुआ जहाँ राम लक्ष्मण और सुग्रीव थे। उनमें हाथ जोड़े हुए हनुमान ऐसा लग रहा था मानो काल यम और शनिसे घिरा हुआ ग्रह हो ॥१-१०॥

[११] रामने उसे अपने आधे आसनपर बैठाया पर वह जिनवर शासनमें मुनिवरकी तरह निःसंग होकर उसपर बैठ गया।

एक ओर हनुमान और राम आसीन थे मानो मनमोहन वसन्त और काम ही हों। जाम्बवन्त और सुग्रीव भी ऐसे सोह रहे थे मानो इन्द्र और प्रतीन्द्र दोनों ही बैठे हों। परममित्र लक्ष्मण और विराधित भी, स्थिर और स्थूल चित्त नमि-विनमिकी तरह लगते थे। सुभट अङ्ग और अंगद भी ऐसे शोभित थे मानो चन्द्र और सूर्य ही अवतरित हुए हों। राजा नल और नील ऐसे बैठे थे मानो एकासन पर यम और वैश्रवण बैठे हों। रणमें समर्थ गय गवय और गवाक्ष भी ऐसे लगते थे मानो गिरिवरमें रहनेवाले सिंह हों और भी एक-से-एक विशाल शरीर वीर प्रचंड वीर पास बैठे थे। इसी अन्तरमें धर्मकि कुलगृह रामने हनुमानकी प्रशंसा करते हुए कहा "आज ही मेरा मनोरथ सफल है आज ही मेरा भाग्य है आज ही मेरी सेना प्रचण्ड है क्योंकि आज ही चिन्तासागरमें पड़े हुए मुझे हनुमानरूपी नाव मिली ॥१७॥

[१४] पवनपुत्रके मिलनेपर हमें त्रिलोक ही मिल गया। शत्रुकी सेनामें इसका भार कोई भी धारण नहीं कर सकता।" यह सुनकर जयकारपूर्वक हनुमानने रामसे कहा "देव देव ! इस वसुन्धरामें बहुतसे रत्न हैं। यहाँपर सिंहोंमें भी सिंह हैं। जहाँ जाम्बवन्त नल नील और अंगद निष्ठुर मद और मदरागकी तरह हैं जहाँ सुग्रीव कुमार विराधित जैसे अतुल वीर अप यशोंका प्रसाधन करनेवाले हैं। समुन्नतमान गय और गवाक्ष हैं और भी अनेक एक-एक सुभट प्रधान हैं इनमें मेरी गिनती वैसी ही है जैसी सिंहोंके बीचमें कुरंगकी। लेकिन तब भी आपके मत्सरका निस्तार कर दूँगा। आदेश दीजिए किसे मारूँ युद्धमें किसके मान और अहंकारको भंगकर दुनियामें तुम्हारे यशका डंका

बनाऊँ।" यह सुनकर सन्तुष्ट मन जाम्बवन्तने सन्देश देते हुए कहा, "राघवका मनोरथ पूरा करो, और जाकर सीताकी खोज करो" ॥११॥

[१५] यह सुनकर सार ?? से प्रहार करनेवाले हनुमानने कहा, "हे देव! जाऊँगा पर यह कितना सा काम है, अरे रावण कोई बड़ा-सा विशेष आदमी दाखिय, जिससे रावणको यमपुरी भेज दूँ और सीता तुम्हारी हथेलीपर ला दूँ।" हनुमानकी महा गर्जना सुनकर राम (सीतापति) का हृदय भर गया। उन्होंने कहा 'भो भो हनुमान, साधु साधु, भला यह विस्मय और किसको सोहता है तो भी मुनिवरका कहा करना चाहिए। उसका (रावणका) विनाशकाल कुमार लक्ष्मणके पास है। इसलिए रावणके साथ लड़ना मेरा तुम्हारा या सुग्रीवके लिए अनुचित है। हाँ एक सन्देश और ले जाना। यदि सीता जीवित हों तो उनसे कह देना कि राम कहते हैं कि तुम्हारे वियोगमें राम हथिनीसे वियुक्त हाथीकी तरह क्षीण हो गये हैं। राम तुम्हारे वियोगमें उसी तरह क्षीण हो गये हैं जिस तरह दुर्गुणियोंकी बातोंसे सज्जन पुरुष, कृष्ण पक्षमें चन्द्रमा, शिशिरकी आकाशोंमें मुनि ध्यान गर्वसे उत्तम नग भूमण्डलमें कवियोंका काव्य विशेष मनुष्योंसे वर्जित सुपथ क्षीण हो जाता है। और भी उन्होंने अपनी पहचानके लिए अंगूठी दी है। और कहा है कि सीता [illegible] बुरा मत मानना ॥१५॥

छियालीसवीं सन्धि

रामका सन्देश और अंगूठी पाकर, पुलकितबाहु हनुमान सीताकी खोज करने चल पड़ा।

[१] विमानमें बैठा हुआ वह ऐसा जान पड़ता था मानो आकाशमें रथसहित सूर्य ही जा रहा हो। उसका विमान मणि किरणोंकी कान्तिसे चमक रहा था, वह निशा चन्द्रके समान चन्द्रकान्त मणियोंसे जड़ा हुआ था। ऊपर, सुन्दर चन्द्रशालासे विशाल था। वह घण्टोंकी टनटन ध्वनिसे मुखरित हो रहा था। रुनझुन करती हुई किंकिणियोंसे मुखर था। चल-चल और चर-चर शब्दसे गुंजित था। हवासे चढ़ती हुई, ऊपर मकर ध्वजाओंके विस्तृत आटोपसे नाच-सा रहा था। वह, छत्रदण्डसे उन्नत, मधुर सुन्दर चमरोंके भारसे भास्वर था। उसमें मणियोंके झरोखे, छज्जे, किवाड़ और तोरणद्वार थे, तथा मणियों और प्रवालों और मोतियोंके झूमर लटक रहे थे। मंडराते हुए भ्रमरोंका समूह उसका घूम रहा था, मन्दराचल पहाड़पर स्थित जिनालयकी जिनप्रतिमाकी तरह, वह, पटह, मृदंग और कंसालकस सहित था। आकाशमें जाते हुए उसने विद्याधरोंके राजा महेन्द्रका नगर रानीपरकी भाँति देखा। उसमें चार द्वार चार गोपुर और चार परकोटे थे और वह उड़ती हुई पताकाओंसे व्याप्त था॥१-१०॥

[२] महेन्द्र पर्वतपर स्थित वह नगर लक्ष्मीसे भरपूर और धनधान्य तथा ऋद्धि-वृद्धिसे व्याप्त था। उसे देखकर हनुमानको ऐसा लगा मानो इसने स्वर्गको ही मात दिया हो। पूछनेपर कमलनयनी अवलोकिनी विद्याने कहा "देव, इस नगरमें बड़ा महामाहात्मी दुष्ट और क्रूरहृदय राजा महेन्द्र रहता है जिसने जनमनको आनन्द देनेवाले तुम्हारे प्रसवकालमें

तुम्हारी माँ को, जनशून्य, वनगजों और सिंहोंसे संकुल जंगलमें छुड़वा दिया। यह माहेन्द्र नामकी नगरी है जिसे कामदेवने कामनगरीकी तरह निर्मित किया है।" यह सुनकर, हनुमान बहुत भारी मत्सरसे भर उठा मानो शनीश्वर ही मीन राशिमें पहुँच गया हो। आमपसे क्रुद्ध होकर उसने विचार किया कि गमन स्थगितकर पहले मैं युद्धमें इस राजाका अहंकार चूर-चूरकर दूँ ॥१-१०॥

[३] उसने तत्काल विद्याके बलसे रथ विमान हाथी, घोड़ों और योधाओंसे संकुल सेना गढ़ ली। जो बिजलीसे चमकते हुए मेघजालकी तरह, पटह और मृदंगोंसे अत्यन्त मुखर थी। चमकते हुए सैकड़ों शस्त्रोंसे संघटित थी। धवल छत्र और फहरते हुए ध्वजपटोंसे सहित मुखपर कानके चमरोंको डुलाते हुए, और मद झरते हाथियोंकी घटासे श्याम हिनहिनाते हुए अश्वसमूहोंसे उत्कट सन्तुष्ट और पुष्ट शरीरवाले सुभटोंसे संकुल, और मत्सर शक्ति तथा सम्बलसे श्याम उस सेनाको देखकर, शत्रुसेनाका संहार करनेवाले महेन्द्रनगरमें क्षोभ फैल गया। सुभट कठोर योधा तैयार होने लगे। फरसा चक्र, मुद्गर और धनुष लेकर, आकाशमें भयंकर सैनिक घेरा डालने लगे। उनकी दृष्टि कठोर थी और वे निष्ठुर दाँतोंसे अधर काट रहे थे। महाभयसे भीषण राजा महेन्द्रका पुत्र भी सेनाके साथ तैयार होकर, हनुमानसे वैसे ही भिड़ गया मानो जैसे विन्ध्याचलमें आग लग गई हो ॥१-९ ॥

[४] पवनञ्जय और महेन्द्रराजके पुत्रोंकी सेनाओंमें घमासान लड़ाई होने लगी। वे दोनों ही सुन्दर विजयलक्ष्मीका आलिंगन करनेके लिए शीघ्रता कर रहे थे। आक्रमणकी ललकारसे युद्धमें

भीषणता बढ़ रही थी। अविच्छिन्न गजघटा संघर्षमें लोट-पोट हो रही थी। अश्वोंकी झनझनाहट मर्मकरता उत्पन्न कर रही थी। किलकिली वरवीरोंके उरमें घुसेड़ी जा रही थी। उनकी भौंहें और उनकी भंगिमा विकट आकार की थीं। आँखें लाल हो रही थीं। प्रहारोंके प्रकृष्ट भार और व्यापारसे वह संग्राम दुर्दर्शनीय हो उठा था। योधागण हुंकार हुंकार और धमकारमें व्यस्त थे। गजोंके प्रवाम पदाति सैनिकोंको लग रहे थे। वक्षस्थल विदीर्ण होनेसे उनके मग मग विकल थे। निकली हुई आँतोंकी मालाओंसे वह युद्ध व्याप्त था। ऐसे उस अत्यन्त भयंकर युद्धमें हनुमान और माहेन्द्र दोनों आपसमें आ भिड़े। दोनों प्रचण्ड आघातोंसे संहार कर रहे थे। दोनों ही गजोंके कुम्भस्थल विदीर्ण कर रहे थे। दोनों आकाशगामी विद्याधर थे। दोनों यशके इच्छुक थे। दोनोंके अधर काँप रहे थे। इस प्रकार अपने-अपने भावोंको भावासे वह युद्ध व्याप्त हो रहा था। ऐसे उस अत्यन्त भयंकर युद्धमें हनुमान और माहेन्द्र दोनों भिड़ गये। दोनों ही प्रचण्ड आघातोंसे संहार करनेवाले थे, दोनों ही अपने-अपने वाहनोंपर आरूढ़ होकर त्रिविष्टप और हयग्रीवकी तरह लड़ने लगे ॥१-१०॥

[४] तब पहली ही भिड़न्तमें माहेन्द्र-पुत्रने एक दम विरुद्ध होकर हनुमानके ध्वज-पटपर तीरोंकी बर्छोंकी बौछार लगा दी। परन्तु हनुमानने उसके तीर जालको उसी प्रकार नष्ट कर दिया जिस प्रकार निशान्त होनेपर सूर्य अन्धकारके पटलको नष्ट कर देता है, जैसे परम योगी मोहजालको नाश कर देता है वैसे ही मायावी आगसे उसने उसके तीरोंको नष्ट कर दिया। आगसे प्रदीप्त होकर आकाशतल जल उठा। समस्त शत्रुसेना भ्रष्ट होने लगी। कहीं किसीका छत्र था तो कहीं किसीकी पताका का अग्रभाग।

कहींपर किसीका सिर अलग लगा, कहीं किसीका कवच और कटिसूत्र। कहीं किसीका, शृंखलासहित कवच खिसक गया। इस प्रकार मारुतीकी प्रचण्ड ज्वालामें शत्रुसेनाओंसे माफ घूमने लगी? केवल महेन्द्र-पुत्र ही शेष रहा। वह पवनपुत्रके पास इस प्रकार पहुँचा मानो सिंहके पास सिंह पहुँचा हो। वह अब तक अपने लक्ष्य वीरका सधान करता तब तक पवन-पुत्र हनुमानने रुष्ट होकर अपने स्वर्णिम तीरोंसे उसे आहत कर दिया। तथा दुश्मनके हृदयकी तरह उसके श्रेष्ठ धनुषको छिन्न-भिन्न कर गिरा दिया ॥१-१०॥

[६] और जब तक महेन्द्रपुत्र दूसरा धनुष ले, तबतक हनुमानने तीरोंसे उसका रथ छेद डाला। उसके श्रेष्ठ रथकी पीठ टूक टूक होने पर, जुते हुए अश्व गिर पड़े। छत्र-दण्ड मुड़ गया। पताका छिन्न-भिन्न हो गई। तब महेन्द्रपुत्र दूसरे विमानपर जाकर बैठ गया। किन्तु पवनपुत्रने उसे तीरोंसे उसी प्रकार नष्ट कर दिया जिस प्रकार सिद्ध पुरुष मरणको और दुष्कर्मोंको नष्ट कर देते हैं ॥१-४॥

तब महेन्द्रपुत्र बलहीन होकर ही तमतमाता हुआ निकला। अब वह निर्भय मुनिकी भाँति प्रतीत हो रहा था। किंतु हनुमानने उसे आहतकर बाँध लिया। उसे उसने वैसे ही उठा लिया जैसे गरुड़ पक्षी साँपको उठा लेता है। इस प्रकार अपने पुत्रके आहत और बद्ध हो जानेपर राजा महेन्द्रने युद्धरत पवनपुत्र हनुमानको ललकारा और प्रहरणशील दुर्दर्शनीय और भयभीषण वह, अंजनाके प्रियपुत्र हनुमानसे आकर भिड़ गया। उसके हाथमें खड्ग और मुष्टिके तेज मुद्गर थे। उसने बावल और मालेसे

सचमुच वह आशंका उत्पन्न कर रहा था। पहली ही भिड़न्तमें राजा महेन्द्रने तीरोंकी बौछार की। किन्तु कपिध्वज हनुमानने उन्हें वैसे ही छेद दिया जिस प्रकार जिनेन्द्र भव-संसारको छेद देते हैं ॥१-१ ॥

[७] युद्ध-भूमिमें जब हनुमानने इस प्रकार तीरोंको नष्ट कर दिया तब राजा महेन्द्रने धकधक करता हुआ आग्नेय बाण छोड़ा तब हनुमानने भी लपटें उड़ाते वज्रघोष करते हुए ज्वालमालासे भीषण उस तीरको देखकर, तुरन्त अपना वारुण बाण छोड़ा। उसने आग्नेय बाणको वैसे ही ठंडा कर दिया जैसे गरजता हुआ मेघ ग्रीष्म कालको ठंडा कर देता है। राजा महेन्द्रने वायु बाण छोड़ा पवनपुत्र उससे भी नहीं डरा। तब उसने अपनी मायावृष्टि झाककर और तमतमाकर मजबूत जड़वाला स्थिर तथा स्थूल आकारका प्रचुर पत्तोंवाला विशाल वटवृक्ष फेंका। किंतु हनुमानने उसके भी वैसे ही सौ टुकड़े कर दिये जैसे पूर्व मुनिकवि के काम्यार्थपदके टुकड़े-टुकड़े कर देता है। तब राजा महेन्द्रने पहाड़ उखाड़ा परन्तु हनुमानने उसे भी वैसे ही काट दिया जैसे सिद्ध नरकको काट देते हैं। इस प्रकार राजा जो भी फेंकता हनुमान उसे ही नष्ट कर देता उसी प्रकार जिस प्रकार लक्षणहीन व्यक्तिके हाथमें प्रत्येक अर्थ नष्ट हो जाता है ॥१-१ ॥

[८] यह देखकर अंजनाका पिता राजा महेन्द्र अपने मनमें व्याकुल हो उठा। उसकी क्रोधाग्नि भड़क उठी। उसने घुमाकर गदा मारी। उस वज्रनिर्घातके प्रहारसे हनुमान उसी प्रकार गिर पड़ा जिस प्रकार दुर्वातसे वृक्ष गिर पड़ता है। उस गदाके प्रहारसे हनुमान उसी तरह गिर गया जिस प्रकार दुर्निवार वज्रके आघातसे पहाड़। हनुमानके इस प्रकार गिरनेपर आकाश-

सवमें देवताओंगोंमें बातें होने लगी—"अरे निश्चल मेघपुञ्जके समान हनुमान का गरजना व्यर्थ गया। रामका न तो वह दौत्य ही साध सका, और न उन्हें सीता देवीका मुख दिखा सका। रावणके वनका नाश भी नहीं किया गया' केवलज्ञानियोंका कहा हुआ विफल हो गया"। अब सुरसमूहमें इस प्रकार बातें हो रही थी कि इतनेमें हनुमान फिरसे तैयार हो गया। हाथमें धनुष लेकर वह उठा और तीरोंसे उसने राजा महात्क्का निरस्त्र कर दिया। रौद्र कपिध्वजी हनुमानने सहसा युद्धमें क्षुब्ध होकर अपने तीरोंकी बौछारसे राजा महात्क्का उसी प्रकार अवरुद्ध कर दिया जिस प्रकार गंगाके प्रवाहका समुद्र अवरुद्ध कर देता है ॥१-१०॥

[६] इस प्रकार मावाकी शत्रुताके कारण क्रुद्ध होकर हनुमानने युद्धप्रांगणमें ही राजा महार और उसके पुत्र महेन्द्रको पकड़ लिया। इस प्रकार मानमर्दनकर और संहार मचाकर हनुमान् राजाके चरणोंमें गिर पड़ा। वह बोला 'राजन् मनमें बुरा न मानिए। जो कुछ भी मैंने बुरा किया है उसे क्षमा कर दीजिए। अरे शत्रुसंहारक तात, क्या तुम अपनी पुत्री अजनाका भूल गये। मैं उसीका पुत्र तुम्हारा नाती हूँ। मेरा वंश निर्मल और गात्र समुज्ज्वल है। फिर मैं उसी पवनञ्जयका पुत्र हूँ जिसने युद्धमें वरुणका अहंकार नष्ट किया था। सुग्रीवने रावणसे अभ्य थना करनेके लिए मुझे भेजा है। उसने रामकी पत्नीका हरण कर लिया है। मैं दूतकर्मके लिए जा रहा था कि मार्गमें आपका नगर दीख पड़ा। बस, मुझे माताजीके वैरका स्मरण हो आया। इसीसे आपके साथ युद्ध कर बैठा हूँ। यह सुनते ही विद्याधरोंके नयनप्रिय राजा महेन्द्रने स्नेह-विह्वल होकर हनुमानका जीभर आलिङ्गन किया ॥१-१॥

[१०] यह बोला, "साधु-साधु तुम पवनञ्जयके सच्चे पुत्र हो, तुम्हें छोड़कर, और किसमें इतनी वीरता हो सकती है, जो सैकड़ों शत्रु-युद्धोंमें यशका निकेतन है, जो दोनों कुलोंका दीपक और तिलक है, जो दोनों कुलोंमें उज्ज्वल और चन्द्रकी तरह अकलंक है जो सिंहकी तरह पराक्रमी और युद्धमें निडर है, दसों दिशाओंके मण्डलमें जिसका नाम विख्यात है, जो मदमाते हाथियोंके कुम्भस्थलोंका झुकानेवाला और जो प्रवर विजयलक्ष्मीके आलिङ्गनका आवास ही है। जो सकल शत्रुसमूहका दुष्परानीय संहारक है, जो कीर्तिका रत्नाकर, यशका ध्वजावत विजयलक्ष्मीका प्रिय श्रीरमारायण, सज्जनोंका कल्पवृक्ष, सत्यका मेरु, प्रवर प्रहार फनोंके धरणेन्द्र मानमें विन्ध्याचल, जो अभिमानमें शिखर, धनुष धारियोंमें बाण-रूपी नखोंके समूहसे सहित सिंह, शत्रुरूपी मृगोंके लिए महागज और जो शत्रुसेनाके जलका शोषक है, आशंका और कलंकसे रहित जो अब तक किसीसे भी नहीं जीता जा सका, वह मैं भी आज तुमसे पराजित हो गया ॥१-१०॥

[११] यह वचन सुनकर, दुर्दम दानव-संहारक हनुमानने कहा "वाह इसमें पराभवकी कौन-सी बात आप यदि तेजपिण्ड दिवाकर हैं और मैं आपका ही थोड़ा-सा किरण-समूह हूँ आप सुवर्णतिलक चन्द्र हैं मैं भी आपका ही थोड़ा-सा ज्योत्स्ना निकेतन हूँ आप मेरु महासमुद्र हैं और मैं भी आपका ही एक जलकण हूँ, आप समस्त पर्वतोंमें मन्दराचल हैं और मैं भी एक

चट्टानका टुकड़ा हूँ, आप धार गर्जन करनेवाले सिंह हैं और मैं छोटा-सा नखनिघात हूँ। आप महागज हैं और मैं भी आपका ही थोड़ा-सा मद विकार हूँ। आप कमलोंसे शोभित मान सरोवर हैं और मैं भी आपका ही छोटा जलकण हूँ। आप महानुभाव श्रेष्ठ तीर्थंकर हैं और मैं भी आपका कुछ-कुछ प्रश स्वभाव हूँ। आपका प्रतिमल्ल कौन हो सकता है? आप किससे पराजित हो सकते हैं। सोनेसे जड़ा हुआ मणि क्या अपनी आभा छोड़ देता है?" ॥१-१ ॥

[१२] तब हनुमानने किसी तरह राजा महेन्द्रको धारज बँधाकर कहा, "तात तात, चलकर रामचन्द्रकी सेनामें मिल जाइए। उन्होंने हमारा बहुत भारी उपकार किया है। क्योंकि उन्होंने दुष्ट मायासुग्रीवको मार डाला है। भला उनकी सेवा कौन कर सकता था। अतः आप ईर्ष्या छोड़कर रामसे मिल जायँ। मैं भी उनका उपकार करूँगा। मैं लंकानरेशके पास जा रहा हूँ।" हनुमानके इन वचनोंको सुनकर राजा महेन्द्र और माहेन्द्र दोनों तुरन्त चल पड़े। वे एक पलमें ही सुग्रीव राजाके नगरमें पहुँच गये। रामने (उन्हें आते देखकर) जाम्बवन्तसे पूछा कि ये कौन हैं। कहीं काम समाप्त किये बिना ही हनुमान लौटकर तो नहीं आ गया है? इसपर मन्त्रीने उत्तर दिया कि यह अंजना देवीके पिता महेन्द्र राजा हैं। जब तक राम और जाम्बवन्तमें इस प्रकार बातें हो रही थीं तब तक राजा महेन्द्र उनके सम्मुख ही आ पहुँचे। रामके एकसे एक प्रचण्ड सबकोंने अपने कठोर और दृढ़ भुजदण्डोंसे राजाका (शुभागमन पर) अर्घ्यदान किया।

●

[४७ सत्तचालीसमो संधि]

सायरु पवर-विमाणारूढउ ललिय-जयसिरि-बहु-अवगूढउ
सामि-कज्जें संचल्लु महाइउ कालें दहिमुह-दीउ पराइउ ॥

[१]

गय गयमेल तेण ण्हें जन्तें । दहिमुहणयरु दिट्ठु हणुवन्तें ॥१॥
विउलाराम सीम चउ-पासेंहिं । भरिउ णाइं गुरु रिसिय-सहासेंहिं ॥२॥
जहिं पप्फुल्लियाइं उज्जाणइं । णाइं जं जिणवर पुराणइं ॥३॥
जहिं ण कयावि तलायइं सुण्णइं । णं सीलवइं सुरट्ठ पर पुण्णइं ॥४॥
जहिं धाविउ मिल्लव सोवालउ । ण कुणाइउ वेढमुह गमणउ ॥५॥
जहिं पायार ण केण वि लंघिय । जिण-उवएस णाइं गुरु-संठिय ॥६॥
जहिं देउलइं धवल-पुण्डरियइं । पोत्था-वायणइं व बहु-चरियइं ॥७॥
जहिं मन्दिरइं स-तोरण-वारइं । णं समसरणइं सुप्पविसारइं ॥८॥
जहिं सुय वेय-सुत्त दरिसावय । हरि हर-बम्महिं जेहा सावय ॥९॥
जहिं वर-वसह तिणयण समउ । पवर भुअंग- सप्पेंहिं सहुणउ ॥१० ॥
जहिं गयणग्ग वसइ दसकंधर-माइ । राम- तिलोयणु जेहा गयवइ ॥११॥

सैंतालीसवीं सन्धि

इस प्रकार अभिनव विजयलक्ष्मीका आलिंगन करनेवाले हनुमानने विशाल विमानमें बैठकर अपने स्वामीके कामके लिए प्रस्थान किया। शीघ्र ही महनीय वह दधिमुख विद्याधरके द्वीपमें लीलापूर्वक ही पहुँच गया।

[१] आकाश मार्गसे जाते हुए हनुमानको दधिमुख नगर दिखाई दिया। उस नगरके चारों ओर उद्यान और सीमाएँ इस प्रकार थीं मानो उसने हजारों ऋषियोंको (कंचुक) नख लिया हो। विकसित और खिले हुए विमान उसमें ऐसे लगते थे मानो बड़े-बड़े तीर्थंकर-पुराण हों। वहाँ एक भी सरोवर सूखा नहीं था, मानो वे परदुःखकातरतासे ही शीतल थे। उनकी विस्तृत खाइयाँ ऐसी जान पड़ती थीं मानो अधोगामी कुगति ही हो। उसका परकोटा कोई उसी प्रकार नहीं लाँघ सकता था जिस प्रकार गुरु-उपदिष्ट जिनोपदेशको कोई नहीं लाँघ पाता। उसमें देवकुल भवउत्कर्षोंकी तरह थे। वहाँके लोग पुस्तक वाचनाकी तरह (स्वाध्यायकी तरह) बहुत चरितवाले थे। जहाँ तोरण-द्वारोंसे अलंकृत मंदिर ऐसे लगते थे मानो प्रातिहार्योंसे सहित समवशरण हों। वहाँके बाजार हरि हर और ब्रह्माकी तरह क्रमशः मुख [ब्रह्म और हाथ] नेत्र [वक्र और मार्ग] और सुत्त (सूत्र) लिये हुए थे। जहाँ वेश्याएँ शिवकी तरह बड़-बड़े भुजगों (लंपटों और साँपोंसे) आलिंगित थीं। जहाँ गृहपति राम और शिवकी तरह हलधर [राम हलधर कहलाते हैं, शिव बैलपर चलते हैं, और गृहस्थ बैल और हलकी इच्छा रखते हैं] थे। इस प्रकार अनेक

उपमाओंसे भरपूर सुकविके काव्यकी तरह विस्तृत उस नगरमें राजा दधिमुख अपने परिवारके साथ इस तरह रहता था मानो स्वर्ग का प्रधान इन्द्र हो ॥१-२॥

[२] उसकी सबसे बड़ी रानी तरंगमति, कामदेवकी रति, या इन्द्रकी शचीकी भाँति थी। दिन आये और चले गये। इसी अवसरमें उसकी तीन पुत्रियाँ उत्पन्न हुईं। उनके नाम थे चन्द्रलेखा, विपुलप्रभा और तरंगमाला। सुकविकी रसवर्धित कथाकी भाँति वे तीनों कन्याएँ दिन-दूनी रात-चौगुनी बढ़ने लगीं। तब बहुत दिनोंके अनन्तर सुरतिप्रिय राजा अंगारकने दधिमुखके पास अपना दूत भेजकर यह कहलाया, "हे माम (ससुर), यदि तुम भला चाहते हो तो शीघ्र ही तीनों कन्याएँ मुझे दे दो" ॥३-६॥

(यह सुनकर) और अपनी पुत्रियोंके विवाहकी बात मनमें रखकर राजा दधिमुखने कल्याणमुक्ति नामके मुनिसे पूछा कि "मैं अपनी लड़कियाँ किसे दूँ और किसे न दूँ।" मुनिवरने फौरन राजासे कहा कि "विजयार्ध पर्वतकी उत्तर श्रेणीका मुख्य राजा सहस्रगति है। युद्धमें जो उसका अन्त कर दे, तुम अपनी तीनों पुत्रियाँ उसीको देना" ॥७-९॥

[३] गुरुके वचनोंसे अत्यंत भावुक वह राजा दधिमुख इस चिन्तामें पड़ गया कि अनेक विद्याओंके जानकार राजा सहस्रगतिसे कौन युद्ध कर सकता है। अथवा मुझे इन सब बातोंमें न पड़ना चाहिए। क्योंकि गुरुका कहा हुआ प्रलयकालमें भी नहीं चूक सकता (गलत नहीं हो सकती)। वह अनेक जन्मोंमें भी प्रमाणित होकर रहता है। अवश्य ही एक दिन वह मनुष्य उत्पन्न होगा जो सहस्रगतिके साथ युद्ध करेगा। यह पता लगनेपर अनिंद्य सुन्दरी उन कन्याओंने अपने पितासे पूछा

कि "हे वसुर्संहारक तात ! क्या हमलोग वनवासके लिए जाँय। वहाँ हम किसी मंत्रकी आराधना करेंगी या योगके अभ्यास द्वारा कोई विद्या साधेंगी।" यह कहकर चञ्चल भौंहों और मणिमय कुण्डलोंसे शोभित कपोलोंवाली वे तीनों कन्याएँ विशाल वनमें इस प्रकार प्रविष्ट हुईं मानो शरीरमें तीन गुप्तियाँ ही प्रविष्ट हुई हों॥१-९॥

[४] उन्होंने उस वनको देखा, जो भवससारकी तरह अशोकवर्जित (वृक्षविशेष सुखसे रहित है) दुष्टके मुखमंडल की तरह तिलक (वृक्षविशेष और टीका) से रहित, कल्याक स्तनमण्डलकी तरह निच्चूय [आम्र वृक्ष और चूचकसे रहित], कुस्वामीकी सेवाकी तरह निष्फल, मनतक समूहके समान निसाल [ताड़ वृक्ष और तालसे रहित], स्वर्गकी तरह पुन्नागवर्जित [राक्षस और सुपारीका वृक्ष] बौद्धोंके गगनकी तरह निशून्य था। उस वनमें सूकरी कामिनीकी लीला धारण कर रही थी। जैसे कामिनी अज्ञात भूप विकीर्ण करती चलती है वैसे ही वह चल रही थी। उस वनमें सूर्यकी किरणोंसे पत्थर जल उठते थे मानो दुर्जनोंके वचनोंसे सज्जन ही जल उठे हों। इस प्रकारके उस विस्तृत वनमें बैठे-बैठे उन कन्याओंका चौथा दिन व्यतीत हो गया। इसी समय दो विरक्त चारण महामुनि वहाँ आये और एक कासके चौथे भागकी दूरीपर आठ दिनके लिए कायोत्सर्गमें स्थित हो गये॥१-८॥

[५] फिलमिलाती हुई भी उनकी आँखें चमक रही थीं। उनके हाथ लम्बे और उठे हुए थे। उन्होंने भोजन छोड़ रखा था। उनका शरीर स्वाति और मल-निकरसे प्रसाधित था। इस प्रकार मानपिण्ड और परिग्रहसे हीन उन्हें प्रतिमायोगमें लीन हुए आठ

तं णिसुणेवि कुविउ अइरावउ । जं हणि विएँण सिरु सय-वारउ ॥७॥
'भञ्जमि अज्जु महप्फल कण्णइँ । जेण ण होन्ति मज्झु ण वि अण्णहुँ ॥८॥

घत्ता

धमरिस-कुद्धउ कुम्भइ पधाइउ गम्पिणु कमलँ बहुसालउ लाइउ ।
पणवणमासु समुट्ठिउ वण-वउ महि पच्छिउ णाइँ बल-बण-वउ ॥९॥

[१]

पउम-दवग्गि दुक्कु सिप्पीरहों । णाइँ विलेणु णिरीन-सरीरहों ॥१॥
सयलु वि काणणु आलाभलिउ । रामहो विमउ णाइँ संदीविउ ॥२॥
कम्पइ धाउ वलाइँ पलित्तइँ । ण पहरेहि हसालम चित्तइँ ॥३॥
सुक्केहि मि असुह पजालिय । णं सुपुरिस पिसुणेहिँ संतापिय ॥४॥
कहि मि पलइँ वणयर-मिहुणइँ । कन्दन्तइँ पिय-विरह-विहुणइँ ॥५॥
कम्पि मुणिन्दहुँ सरणु पइट्ठइँ । सावय इव संसारहों तट्ठइँ ॥६॥
तहिँ अवसरेँ गयणङ्गणेँ जन्तें । दाविउ णिय-विमाणु हणुवन्तें ॥७॥
गउ गउ काइउ केम हुआसणु । कवण पमाणु अकमि गुरु-पेसणु ॥८॥

घत्ता

भड सरणाइएँ भड वत्तिमाहँ सामि कज्जेँ भड मित्त-परिमाइँ ।
आसँहिँ विदुरेँ दिण्णा भड लग्गइ सो भड मरण-सए वि ण मुच्चइ ॥९॥

दिन व्यतीत हो गये। इसी बीचमें किसीने आकर स्त्री-लोलुप वर अंगारकसे यह कह दिया कि "हे देवदेव! तुम्हारी अभिलषित तीनों कन्याएँ वनमें चली गई हैं। तुम उनको खोज लो और फिर बार-बार उनसे संतुष्ट होओ।" यह सुनकर अंगारक एकदम आग बबूला हो उठा मानो किसीने आगमें सौ बार घी डाल दिया हो। उसने यह निश्चय कर लिया कि आज मैं अवश्य उन लड़कियों का घमण्ड चूर-चूर कर दूँगा जिससे न तो वे मेरी हो सकें और न किसी दूसरेकी। अत्यन्त निष्ठुर वह, क्रोधसे भरा हुआ दौड़ा, और उस वनमें आग लगा आया। धक धक करके आग धधकने लगी और शीघ्र दुष्टजनके वचनाकी भाँति भड़क उठी ॥१-६॥

[६] सूखे तिनकोंकी वह पहली आग उसी प्रकार फैलने लगी जिस प्रकार निधनके शरीरमें क्लेश फैलने लगता है। ज्वालमाला से वह समूचा वन उसी प्रकार प्रदीप्त हो उठा जिस प्रकार रामका हृदय (सीता के वियोगमें) सतप्त हो रहा था। कहीं पर सूखे तिनकोंका ढेर जल रहा था कहीं पर वनचरोंके झाड़े नष्ट हो रहे थे। कहींपर वे अपने बच्चोंसे हीन होनेके कारण चिल्ला रहे थे। संसारसे भीत भावकका भाँति वे उन मुनिवरोंकी शरणमें चले गये। इस अवसरपर आकाशमार्गसे जाते हुए हनुमानने (उस आगको देखकर) अपना विमान रोक लिया। वह अपने मनमें सोच रहा था कि 'मर मर' यह आग किसने लगा दी। मुझे अपना जाना स्थगित करके गुरुकी सेवा करनी चाहिए। क्योंकि (नीति विदोंका कथन है कि) शरणागतका भाना वैरीका पकड़ना स्वामीका काय और मित्रका परिग्रह, इन कठिन प्रसंगोंमें जो चूकता नहीं वह शत-शत जन्मोंमें भी शुद्ध नहीं हो सकता ॥१-६॥

[७] अपने मनमें विशुद्ध रूपसे यह विचारकर हनुमानने अपनी विद्याके प्रभावसे समुद्रका सारा पानी सींचकर मूसलाधार धाराओंमें उसे बरसा दिया जिससे जलती हुई आग शान्त हो गई, ठीक उसी प्रकार जिस प्रकार क्षमाभावसे बढ़ता हुआ कलि युग शान्त हो जाता है। इस तरह उस उपसर्गको दूरकर शत्रु-संहारक हनुमान उन मुनियोंके निकट पहुँचा। उसने अपने हाथोंसे पूजा और भक्तिकर उनकी खूब वन्दना की। उन मुनियोंने भी हाथ उठाकर हनुमानको कल्याणकारी आशीर्वाद दिया। इसी अवसरपर विद्या सिद्धकर और मेरु पर्वतकी प्रदक्षिणाकर, केलेके गाभकी तरह सुकुमार अलंकारोंसे सहित उन कन्याओंने आकर भद्र-समुद्र मुनियोंके चरणोंमें प्रणाम किया। उन्होंने हनुमानको खूब-खूब साधुवाद दिया। उनके सम्मुख स्थित वे तीनों सुरक्षित कन्याएँ ऐसी मालूम हो रही थीं मानो त्रिकालकी तीन सुंदर लीलाएँ ही हों ॥१-६॥

[८] उन्होंने बार-बार हनुमानकी प्रशंसा करते हुए कहा कि "इतनी सुभटताका भला किसी दूसरेको क्या थाह मिल सकती है। आपने बहुत अच्छा चमत्कारका प्रकट किया कि उपसर्गका नामतक मिटा दिया। हे सुंदर यदि आप आज यहाँ न आते तो न तो हम तीनों बचतीं और न ये दोनों मुनिवर।" यह सुनकर हनुमानको रोमाञ्च हो आया। वह अपनी उत्पत्ति दिखाते हुए बोले कि "आप तीनों बहुत ही विनयशील जान पड़ती हैं। आपकी निवास भूमि कहाँ है। और आप किसकी पुत्रियाँ हैं, वनमें आपलोग किसलिए आई और यह अनिष्ट उपसर्ग किसने किया ?" हनुमानके ये वचन सुनकर चंद्रवदन हँसकर कहा—"हम तीनों दधिमुख राजाकी पुत्रियाँ हैं, शायद अंगारकने हमारा वरण कर

लिया था। उसी समय एक केवलज्ञानीने यह बात प्रकट की कि जिससे सहस्रगतिका मरण होगा, और जो कोटिशिला उठायेगा, वही इनका भावी वर होगा" ॥१-८॥

[९] जब यह बात हमारे कानों तक आई, तो इसी कामसे हम लोग वनमें प्रविष्ट हुईं। हम लोग यहाँ आराधना प्रारम्भ करके बारह दिनों तक बैठी रहीं। तब उसपर अंगारकने क्रुद्ध होकर वनमें आग लगा दी, तब भी हमारा मन बदला नहीं बस यही हमारी कहानी है"। तब इसके अनन्तर, पुलकितबाहु हनुमानने हँसकर कहा "आप लोगोंने जो साधा था वह हो गया। सहस्रगतिका मरण हो चुका है जिससे हुआ है, वह हमारे स्वामी हैं। दुनियामें कोई भी उन्हें पराजित नहीं कर सका। उन्हींके पास आपका मनोरथ पूरा होगा"। जब उनमें इस प्रकार बातचीत हो ही रही थी कि इतनेमें अपनी पत्नी सहित दधि मुख राजा पुष्प और नैवेद्य हाथमें लेकर आ पहुँचा। गुरुको प्रणाम और स्तवनकर उसने हनुमानके साथ सम्भाषण किया॥ १-९॥

[१०] बातचीतके अनन्तर वज्रशरीर हनुमानने राजा दधिमुखसे कहा, "हे राजन् तुम महीधरचिह्नवाले किष्किंध नगर अपनी लड़कियाँ लेकर जाओ। नारायणके बड़े भाई वहीं हैं जो केवलज्ञियों द्वारा घोषित इनके वर हैं। युद्धमें उन्होंने विजयार्ध श्रेणिके राजा सहस्रगतिको मार डाला है। हे तात अभिनव भागवाली ये कुमारियाँ रामचन्द्रके ही योग्य हैं, मैं फिर लंका जाऊँगा जहाँ अपने स्वामीकी ही सेवा करूँगा"। यह सुनकर दधिमुख वहाँसे चल पड़ा। वह उस किष्किंध नगरमें आ पहुँचा जो सम्मान दान और युद्धमें प्रमुख था। तब सुग्रीवने आकर

भुवन-विख्यातनाम, रामसे उनकी भेंट कराई उन्होंने भी उन्हें अपने हाथोंसे कामिनीस्तनोंका बढ़ानेवाला आलिंगन दिया ॥ १-९ ॥

अड़तालीसवीं सन्धि

विमानसहित आकाशमें जाते हुए हनुमानने जैसे ही लंका-नगरीमें प्रवेश किया वैसे ही आसाली विद्या आकर उनसे ऐसे भिड़ गई मानो रात ही सूर्यसे भिड़ गई हो।

[१] इतनेमें विशाल देह धारणकर आसाली विद्या हनुमानसे युद्ध करनेके लिए आकर जम गई उसने ललकारा—'मरा-मरा अरे बलपूर्वक अपनेको दिखाओ, मेरी उपेक्षा करके कौन नगरमें प्रवेश करना चाहता है किसका है इतना हृदय (साहस)? आगको कौन बुझा सकता है, आशीविष साँपको अपने हाथ में कौन ले सकता है, धरतीको अपनी काँखमें कौन चाप सकता है मंदराचलके भारको कौन उठा सकता है, यमके मुखमें कौन प्रवेश कर सकता है? अपने बाहुबलसे समुद्र कौन तर सकता है तलवारकी धारपर कौन चल सकता है धरणेंद्रके फनसे मणि कौन तोड़ सकता है। ऐरावत गजके कुम्भस्थलको कौन विदीर्ण कर सकता है, आकाशके प्रांगणमें सूर्यके गमनको कौन रोक सकता है, इन्द्रको युद्धमें कौन मार सकता है, (ऐसे ही) मुझे उपेक्षित समझकर कौन, इस नगरीमें प्रवेशकर सकता है।" यह वचन सुनकर पवनके लाल हनुमानने क्रुद्ध होकर आसाली विद्याको इच्छासे वैसे ही देखा जैसे मन्द शनैश्चर धरतीको देखता है ॥१-९॥

[२] तब उसने पृथुमति नामके मंत्रीसे पूछा, "समरके महामारकी इच्छा किसने की है, (किसका इतना साहस है), कामसे प्रेरित होकर यह कौन ललकार रहा है जो मेरे सम्मुख आकर मुझे जानेसे रोक रहा है।" यह वचन सुनकर मंत्रीने कहा 'क्या तुम्हारे मनमें भी इतनी बड़ी भ्रान्ति है, जबसे रावण ने रामकी गृहिणी सीता देवीका अपहरण किया है, तभीसे परबलके लिए दुर्दर्शनीय विभीषणने लंकाके चारों ओर, आसाली नामकी इस जन-पूज्य आसाली विद्याको रक्षाके लिए नियुक्त कर दिया है' । यह बात सुनकर पवनपुत्र, पुलकसे कण्टकित शरीर हो उठा और बोला "अरे इसका भी मान चूर-चूर करूँगा युद्ध युद्ध आसाली विद्या, मुझसे युद्धकर"। जो तुमने हमेशा गर्वभंजन किया है उसे अभिमानशून्य मत करो। वही तुम हो, और मैं भी वही हूँ। यह रण है, जरा आत्मभावसे हम लोग एक क्षण युद्ध कर लें" ॥१–६॥

(३) साहसी युद्धमें समर्थ हनुमानके हाथमें गदा थी वह कवच पहने था। रथगजका वाहन था उसके पास। वह वानर राज सेनासहित सिंहकी तरह उछलकर, गरजकर, फिर साहस पूर्वक दौड़ा तदनंतर, सेना और विमानको छोड़कर केवल गदा लेकर अकेला ही वह, "युद्ध-युद्ध" कहता हुआ विद्याके सामने आकर ऐसे खड़ा हो गया मानो सिंह ही उत्तम हथिनीके सम्मुख आया हो। या पहाड़की चोटीपर वज्रका आघात हुआ हो या दावानलकी ज्वाल-मालापर पानीकी बौछार हुई हो। उस विशालकाय आसाली विद्याने हनुमानका निगल लिया उसके भीतर प्रविष्ट होता हुआ हनुमान ऐसा शोभित हो रहा था मानो रात होनेपर सूर्य ही अस्त हो रहा हो। तब उस वीरने

भी बढ़ना शुरू कर, और गदाके आघातसे उस विद्याका चूर-चूर कर दिया। पेटके भीतर घुसकर, और बलपूर्वक फैलाकर तथा फाड़कर वह वैसे ही बाहर निकल आया जैसे विन्ध्याचल धरतीको चाहित और विदीर्ण कर निकल आता है ॥१-५॥

[४] इस प्रकार आसाली (आशालिका) विद्याके समरांगणमें धराशायी होनेपर, हनुमानकी सेनामें कल-कल ध्वनि होने लगी। तूर्य बजाकर विजय घोषित कर दी गई। अब हनुमानने क्रीडा पूर्वक लंकामें प्रवेश किया। उसे इस तरह प्रवेश करते हुए देखकर वज्रायुध दौड़ा और 'मारो मारो' कहता हुआ बोला कि "हे महानुभाव, आसाली विद्याका नाशकर कहाँ जा रहे हो, मर प्रहार कर प्रहार कर।' इन वचनोंको सुनकर हनुमान मुड़कर इस तरह दौड़ा मानो सिंहके सम्मुख सिंह ही दौड़ा हो। हाथोंमें गदा लेकर वे दोनों योधा आपसमें भिड़ गये। वे दोनों ही शत्रुयुद्ध का भार वहन करनेमें समर्थ थे। सेनासे सेना टकरा गई। गज गजोंके निकट पहुँचने लगा। अश्वोंपर अश्व और रथोंपर रथ छोड़ दिये गये। ध्वजपर ध्वज और रथप्रेरकपर रथप्रेरक। इस प्रकार देवासुर-संग्रामकी तरह उनमें भयंकर संग्राम होने लगा। रथ, तुरग योधा गज और वाहनोंसे सहित हनुमान और विद्याधरों की सेनाएँ कल-कल ध्वनि करती हुई इस प्रकार भिड़ गईं मानो लक्ष्मण और खरदूषणकी सेनाएँ ही लड़ पड़ी हों ॥१-६॥

[५] अमर्षसे भरी हुई दोनों ही एक दूसरे पर कुपित हो रही थीं। युद्धांगणमें दोनोंके लिए पताका क्षोभ हो रहा था। दोनों हाथोंमें हथियार लेकर आक्रमण कर रही थीं। दुर्जनके मुख की तरह दोनों ही दुदरानीय थीं। बहु शस्त्रास्त्रोंसे क्षुब्ध उस वैसे घोर युद्धके होनेपर निशाचरकी ध्वजावाले वज्रायुधके अनुचर

अक्षमुखने अपने हाथमें भाला ले लिया, और हनुमानके मन्त्री प्रथुमतिसे कहा 'मर मर, ठहर ठहर, मेरे साथ युद्ध कर, आओ करो एक दूसरेकी सेनाका प्रमाण समझ-बूझ लें।" यह सुनकर प्रथुमति इस प्रकार क्रुद्ध हुआ मानो मदगजको देखकर मदगज ही क्रुद्ध हो। आघात करते हुए, तथा राम और रावण नाम लेकर वे दोनों युद्धमें रत हो गये। विद्याधरोंके आयुधोंसे वे इस प्रकार प्रहार कर रहे थे मानो आकाशतलमें विद्युत्समूह ही घूम रहा हो। इतनेमें हनुमानके अनुचर प्रथुमतिने समर्थ होकर, भौंहें टेढ़ी करके अक्षमुखको आहत कर दिया। गदाके प्रहारसे वह धरतीपर लोटपोट हो गया। [यह देखकर] देवता आकाशमें कल-कल शब्द करने लगे ॥१-५॥

[६] इस प्रकार गदाके आघातसे अक्षमुखका पतन होनेपर वज्रायुध आधे ही पलमें क्रुद्ध हो उठा। अपने निष्ठुर प्रहारोंसे वह हनुमानकी सेनाका सम्मर्दन करने लगा। सभी सेनाके प्रणष्ट होनेपर भी हनुमान अकेला ही वहाँ डटा रहा। सिंह लीलाका प्रदर्शन करता हुआ वह मानो अपनी सेनाको यह पाठ पढ़ा रहा था कि भागो मत। वह कठोर असिकर्णिक, भाला गदा और मुद्गरोंको लेकर वेगपूर्वक उछलने लगा। असुरसंहारक कितने आयुधोंको लेकर वज्रायुध भी बरस पड़ा। तब पुलकित बाहु हनुमानने समर्थ होकर अपना दुर्निवार तीक्ष्ण दुर्दर्शनीय और भीषण चक्र मारा। उस चक्रसे छिन्नभिन्न होकर वज्रायुधका सिर-कमल युद्ध स्थलमें गिर पड़ा। फिर भी उसका धड़ अमर्षसे भरकर दौड़ा किन्तु वह दस पग चलकर ही धरतीपर गिर पड़ा ॥ १-६ ॥

[७] जब हनुमानने वज्रायुधका काम समाप्त कर दिया तो उसकी समूची सेना नष्ट होकर विमुख हो गई। अभिमानहीन वह वहाँ पहुँची जहाँ परमेश्वरी लंकासुंदरी क्रीडापूर्वक विद्यमान थी। उसने कहा, "तुम यह बात आज भी न समझ पा रही हो कि युद्धमें आशाली विद्या समाप्त हो चुकी है, जो तुम्हारे पिता वज्रायुध थे वह भी वानरके प्रहारसे मारे गये।" यह सुनते ही लंकासुंदरी विलाप करती हुई दौड़ी। "हे तात, तुम कहाँ चले गये। रोती हुई मुझसे बात करो। सकल भुवनोंमें अद्वितीय वीर हे तात! शत्रु-सेनाका संहारक शरीरवाले हे तात युद्धमें भट समूहके संहारक हे तात, सत्पुरुषरत्न अभिमानस्तंभ, हे तात तुम कहाँ हो।" तब उसकी (लंकासुंदरीकी) सहेली अचिराने अपने हाथसे उसका मुँह पोंछकर कहा कि हला, इस प्रकार व्याकुल होकर क्यों रो रही हो। तुम भी धनुष ले रथपर आरूढ़ हो सेनाको समझा-बुझाकर युद्ध करो॥ १-२॥

[८] यह सुनकर लंका सुन्दरी क्रोधसे भर उठी। वह महारथमें जा बैठी। और धनुष हाथमें लेकर तीर बरसाती हुई वह ऐसी जान पड़ती थी मानो पावस लक्ष्मी इन्द्रधनुषको लिये हुए हो। अचिरा सहेली रथकी धुरापर बैठी थी। अस्खलितमान और शत्रुसेनानाशक उसका रथ चल पड़ा। उसपर बैठकर वह भी प्रचंड होकर युद्धमें घसे दौड़ी मानो सूँड उठाकर हथिनी ही गजपर दौड़ी हो या कालरात्रि ही सूर्यपर सन्नद्ध हुई हो या मानो शब्दपर प्रथमा विभक्ति ही आरूढ़ हुई हो उसने युद्धमें हनुमानको ललकारा वैसे ही जैसे सिंहनी सिंहको ललकारती है। उसके मुखरूपी कुहरसे कड़वी बातें निकलने लगीं "रावणके क्रुद्ध पाप मुड़ मुड़ जा तुमने आशाली विद्या और मेरे पिताका

वध किया है, इससे निश्चय ही आज तुम्हारा यमकाल आ गया है"। यह सुनकर भट-संहारक हनुमानने उसकी भर्त्सना करते हुए कहा "भाग, मेरे सामने मत ठहर। बता, कहीं क्या कन्याके साथ भी लड़ा जाता है?" ॥ १-८ ॥

[९] हनुमानके वचन सुनकर, प्रवर धनुष धारण करने-वाली वह लंकासुन्दरी विभ्रम पूर्वक हँसने लगी, और बोली, 'मैं जानती हूँ कि तुम बहुत जानकार हो। परन्तु इस प्रकारके प्रलापसे तुम मूर्ख ही प्रतीत होते हो, दुर्विदग्ध तुम यह क्या कहते हो। क्या (आगकी) चिनगारी पहाड़को नहीं जला देती। क्या विषद्रुम लतासे आदमी नहीं मरता। क्या नवश्रा नदीके द्वारा विध्यास्त रहित नहीं होता। क्या वज्राग्निसे पहाड़ नहीं टूटता क्या सिंहनी गजको नहीं मार देती। क्या रात गगन-मार्गको नहीं ढक देती क्या यह सूर्यको सूर्यत्वको भग्न नहीं कर देती। यदि तुम्हारे मनमें इतना अभिमान है तो तुमने आशालीके साथ युद्ध क्यों किया।" इस प्रकार गरजकर निशाचरी लंकासुन्दरीने तीरसमूह छोड़ दिया। वज्रायुधकी लड़की उस सुन्दरीके द्वारा प्रेषित पत्रकी तरह उज्ज्वल पुंखोंसे विभूषित तीरोंसे आकाश इस तरह छा गया जिस तरह मिथ्यात्वके वशसे लोगोंका मन आच्छन्न हो उठता है ॥१-९॥

[१०] लेकिन हनुमान तब भी तीरोंसे छिन्न-भिन्न नहीं हुआ वैसे ही जैसे परमागम अज्ञानियोंसे छिन्न नहीं होता। तदनन्तर उसने भी पहला तीर मारा मानो कामदेवने ही रतिके लिए अपना दूत भेजा हो। हनुमानके दुर्निवार और चलते हुए बाणोंने लंकासुन्दरीके तीर समूहको उसी प्रकार छिन्न-भिन्न करके छोड़ दिया जिस प्रकार आग कापटिक जलकर भग्न करके छ

है। एक और तीरसे उसका छत्र छिन्न-भिन्न हो गया माना इसने कमलका ही छिन्न-भिन्न कर दिया हो। या माना यह भावन करते हुए सूरवीरका मस्तक कराल सुवर्णखण्ड ही हो। उस छत्रका धरतीपर गिरता हुआ देखकर लकासुन्दरीने घराता हुआ अपना सुरपा फेंका। किंतु हनुमान उसे उसी प्रकार नहीं मेल सका जैसे कुमुनि तपस्या नहीं मेल पाते। शत्रुपक्षके मानका मर्दन करनेवाले दुर्जेय उस तीरसे छुरपेसे हनुमानके धनुषकी डोरी कट गई। उसकी कमान भी वैसे ही टूट गई जैसे जिनेन्द्रके आगमसे मिथ्यात्व टूट जाता है ॥१-६॥

[११] धनुष टूटनेपर हनुमान सहसा खिन्न हो उठा। उठकर उसने [दूसरा] धनुष ले लिया और तीरोंके जालसे उसने लंकासुंदरीको उसी प्रकार ढक दिया जिस प्रकार दुष्काल धरती को आच्छन्न कर लेता है। किन्तु लकासुन्दरीने अपने तीरोंसे दिशाओंके अन्तरालको ढंक लेनेवाले हनुमानके तीर-समूहको उसे काट दिया माना परमजिनभुवन मोहपटलका ही नष्ट कर दिया हो। एक और तीरसे उसने हनुमानका कवचभेदन कर दिया। किसी प्रकार वक्षस्थल बच गया और हनुमान आहत नहीं हुआ। कवचके छिन्नभिन्न हो जानेपर देवसमूहमें कलकल ध्वनि होने लगी। दिनकरने हनुमानसे कहा कि अरे तुम महिलाके द्वारा किस प्रकार जीत लिये गये। यह वचन सुनकर पुलकितबाहु हनुमानने सूर्यकी भर्त्सना करते हुए कहा—"अरे दिनकर तुम यह क्या कह रहे हो। एक जिनवरको छोड़कर दूसरा कौन है जो गरता हो और साथ ही महिलासे पराजित न हुआ हो" ॥१-८॥

[१२] जबतक हनुमान कुछ और उत्तर दे तबतक लंका सुन्दरीने उसका धनुष छोड़ा। किन्तु हनुमानने एक ही तीरमें उसके

सौ टुकड़े कर दिये। इसपर उस निशाचरीने गदा मारा मानो धरतीने समुद्रमें गंगा ही प्रक्षिप्त की हो। हनुमानने अपने बाणोंसे उसी प्रकार उसे खण्ड-खण्ड कर दिया जिस प्रकार संवर और निर्जरा कुमतिको नष्ट कर देती हैं। तब वह निशाचरी तमतमा उठी और उसने चक्र फेंका परन्तु हनुमानने उसको भी अपने तीरोंसे उसी प्रकार नष्ट कर दिया जिस प्रकार मनीषा आलापक कुकवित्वको खण्डित कर देते हैं। इसपर निशाचरीने हनुमानके ऊपर शिला फेंकी, किन्तु वह भी पवनपुत्रके हाथमें उसी प्रकार आ गई जिस प्रकार स्नाटी स्त्री पर-पुरुषके आलिंगनमें आ जाती है। इस प्रकार लंका-सुन्दरी पवनपुत्रसे उसी प्रकार वंचित हुई जिस प्रकार असती स्त्रीका दृढ़ मन पुरुषसे वंचित होना पड़ता है। इस प्रकार तीर, गदा, अशनि, शिला जो कुछ भी उस महिलाने छोड़ा वह सब हनुमानके ऊपर उसी प्रकार असफल गया जिस प्रकार कृपणके घरसे याचक असफल लौट आते हैं॥१-९॥

[१२] जैसे जैसे हनुमान युद्धमें अजेय होता जा रहा था वैसे वैसे वह कन्या व्याकुल होने लगी। कामके बाणोंसे वह अपने उरमें पीड़ित हो उठी। किसी तरह वह, अपनी इच्छासे धरतीपर नहीं गिरी। वह अपने मनमें सोचने लगी कि हे भुवनके वीर हनुमान 'साधु साधु' तुम्हारा शरीर और वक्ष विजयलक्ष्मीसे अंकित है। शत्रुमर्दक और शत्रुसेनाका ध्वंस करनेवाले, अम्लानित मान साधु साधु' सौभाग्यकी राशि सत्पुरुषरत्न साक्षात् कामदेव, साधु साधु' कामके रूप और बड़प्पनके निकेतन कपिध्वज किंकर साधु साधु! हे विशाल वक्षस्थल प्रचण्डबाहु हे धनुर्धारी साधु साधु' यदि कोई उपमा न हो तब तुम्हारी

घत्ता

पइँ जाइ परज्जिउ हउ समरें वरें पुणु पाणिग्गहणु करें।
जिण-णामु लएप्पिणु मुएवि सरु णं दूउ विसज्जिउ णियघरें वरु ॥६॥

[१४]

जाम पहञ्जणि णामइ मच्छरु।
ताम णिरारिउ हियएँ सुदुद्धरु ॥ तेम तेम तेम चिन्तें ॥१॥१॥
तेण वि गरुअउ णेहु करेप्पिणु।
णाणु विसज्जिउ णामु लएप्पिणु ॥ तेम तेम तेम चिन्तें ॥१॥२॥
सरु घोए वि पवर कुसुमसरीएँ। पडिबोसें कल्लाणसुन्दरीएँ ॥३॥
कणगड्ढ पवणि णिरुमार-णाहु। परिहूअउ विज्जाहर विवाहु ॥४॥
रेहइ सुन्दरि सहुँ सुन्दरेण। वर-करिणि णाइँ सहुँ कुञ्जरेण ॥५॥
णं एव सम्भ सहुँ दिणयरेण। णं सुरसरि सहुँ रयणायरेण ॥६॥
ण धीहिणि णहुँ पवणाणलेण। जिणधम्म णाइँ सहुँ जणवएण ॥७॥
णइ जम्में जम्में वम्मिज्जन्ति णाइँ। णं पुणु वि पुणु वि ताइँ जें ताइँ ॥८॥

घत्ता

एत्थन्तर रयणुँ तुरिउ णहु णिम्मोइँवि जम्मेंवि जिण णवहु।
सुरगणु-जण -मण-सतामण्णो मं को वि पवेसइ रमणहें ॥९॥

[१५]

जम्मेंवि पर-णहु करेंवि जिण-णहु।
उच्चारेप्पिणु जिणवर णाहु ॥ तेम तेम तेम चिन्तें ॥१॥१॥
पाहुइ समीरणि सुहइ रमाउ।
कल्लाणसुन्दरि वेसएँ राउले ॥ तेम तेम तेम चिन्तें ॥१॥२॥
रयणिहिँ माणेप्पिणु सुरय-सोक्खु। संचल्लु णिहालएँ पुत्तु पुत्तु ॥३॥
माउच्छिउ सुन्दरि सुन्दरेण। जणमाल णाइँ कप्पीहरेण ॥४॥

उपमा दी जाय। हे नाथ, युद्धमें मैं तुमसे पराजित हुई। अच्छा हो यदि आप मुझसे पाणिग्रहण कर लें। अपने मनमें यह विचार कर तीरपर अपना नाम अंकित कर इस प्रकार छोड़ा मानो प्रिय के पास अपना दूत भेजा हो ॥१–९॥

[१४] जब हनुमानने अक्षर पढ़े तो झूमकर वह हृदयमें निराकुल हो उठा। उसने भी भारी स्नेह जतानेके लिए अपना नाम लिखकर बाण भेजा। बाण देखते ही प्रवर धनुष ग्रहण करनेवाली लंकासुन्दरीने परितोषके साथ प्रवर स्थूलबाहु हनुमानका आलिङ्गन कर लिया। उन दोनोंका वहीं पर विवाह हो गया। सुन्दरके साथ सुन्दरी ऐसे सोह रही थी मानो सुन्दर गज के साथ हथिनी ही हो। मानो दिनकरके साथ सन्ध्या हो, या मानो रत्नाकरके साथ गंगा हो या मानो सिंहके साथ सिंहनी हो, या मानो लक्ष्मणके साथ विशल्या हो। अब वर्णन कितना और वर्णन किया जाय बार बार यही कहना पड़ता है कि उनके समान वे ही थे। इसी बीचमें हनुमानने समस्त सेनाको स्तम्भित और मोहित कर अचल बना दिया इस आशंकासे कि कहीं कोई मुखर जनोंके मनको सतानेवाले रावणसे जाकर कह न दे ॥१–९॥

[१५] इस तरह शत्रुसेनाको मोहित कर और अपनी सेनाको धीरज देकर और जिनवर भगवानको अवधारणकर हनुमानने उस लंकासुन्दरीके भवनमें प्रवेश किया। और उसने उसके राजकुलमें रातभर रतिसुखका आनन्द उठाया। प्रातःकाल होते ही वह बड़ी कठिनाइसे वहाँसे चला उस सुन्दरने सुन्दरीसे प्रस्थानके समय उसी तरह पूछा जिस तरह लक्ष्मणने वनमालासे

पूछा था। उसने कहा "प्रिये, मैं रावणके पास जाता हूँ रामसे उसकी सन्धि करवा दूँगा। विभीषण, भानुकर्ण, घनवाहन, मय, मारीच और दूसरे लोग क्या कहते हैं इन्द्रजीत अक्षयकुमार और रणमें दुर्निवार पंचमुख क्या कहते हैं। इनमेंसे किसकी क्या बुद्धि है, कौन रामका अनुचर है, और कौन रावणका। बार बार मैं रावणसे यही कहूँगा कि तुम शीघ्र दूसरेके स्त्रीरत्नको वापिस कर दो। रामके लिए सीता देवी अर्पित कर अपनी धरतीका निद्वन्द्व रूपसे उपभोग करो ॥१-९॥

●

उनचासवीं सन्धि

इस लंका सुन्दरीसे विवाह कर रामके आदेशानुसार हनुमानने महाभयभीषण विभीषणके घर प्रवेश किया।

[१] सुरवधुओंके लिए आनन्ददायक रावरात युद्ध मार स्थानमें समय प्रबल शरीर प्रलम्ब बाहु हनुमानने लंकानगरीमें प्रवेश किया। वह इन्द्रजीत भानुकर्ण और मारीच आदि रावणके अनुचरोंके भवनोंको छोड़कर सीधा जन-मन और जन-नेत्रोंके लिए आनन्ददायक विभीषणके घर आ पहुँचा। उसने भी उठकर हनुमानका खूब आलिंगन किया। फिर उसने उसे ऊँचे आसन पर बैठा दिया मानो जिन ही जिनशासन पर प्रतिष्ठित हुए हों। (इसके बाद) पंकजानन विभीषणने पूछा "मित्र इतने समय तक कहाँ थे आप। क्या

आपके कुल और द्वीपमें योगक्षेम नहीं है ? नल, नील, माहेन्द्र, महेन्द्र जाम्बवन्त, गवय, गवाक्षादि राजा अंजना और पवनञ्जय ये सब कुशलसे तो हैं ?" तब हनुमानने हँसकर विभीषणसे कहा कि सब लोग कुशल क्षेमसे हैं। किन्तु राम लक्ष्मणके क्रुद्ध होनेपर केवल रावणकी कुशलता नहीं है" ॥१-१०॥

[२] पुलकितबाहु हनुमानने बार बार गुर्राकर यही बात कही कि विभीषण तुम तो अपने मनमें इस बातको अच्छी तरह सोच लो कि रामके कुपित होने पर उनकी सेना अजेय है। और तब सुमन त्रिपदी छन्दको याद करके सेना सहित हनुमान नाच उठा। फिर उसने कहा कि यदि रामचन्द्र थोड़ा भी रुष्ट हैं तो मानो सिंह ही कुपित हो उठा है। वह (अभी) रहें मैं ही आजकलमें प्रस्थान कर रहा हूँ। मैं प्रलय-समुद्रकी तरह उछल पड़ूँगा। आजकल ही मैं मैं समर्थ हो पड़ूँगा, और गरुड़की भाँति समुद्रको कौंप जाऊँगा। वह रहें, मैं ही आजकलमें सारी सेनाको समझ लूँगा और बैरीसे जूझ जाऊँगा। वह रहें मैं ही आजकलमें भिड़ जाऊँगा और शत्रु सेना रूपी समुद्रको मथ डालूँगा। आजकलमें ही मैं नगरमें प्रवेश करूँगा और रावणके लक्ष्मी-सिंहासनपर चढ़ूँगा। वह रहें मैं ही आजकलमें ही तीरोंसे शत्रुकी सेनाको विमुख कर दूँगा। वह रहें, आजकलमें निशंक सफेद छत्र ध्वज और चिह्नोंको छे लूँगा। इसी कारण मैं सुमावक आदरसे सांत्व करनेके लिए आया हूँ। कि कहीं रामरूपी आगसे रावणरूपी कल्पद्रुम दग्ध न हो जाय ॥१-९॥

[३] और भी विभीषण ! जाम्बवन्तका भी यह वचन सुनो और विचार करो। उसने कहा है—"तुम्हारे होते हुए भी चंचल

घत्ता

अप्पिअउ सीय पवणेंण आवड्ढिय-कोवण्ड-कर ।
णाम ण पावन्ति रणङ्गणें दुग्गम दुद्धर राम-सर' ॥८॥

[५]

अण्णु विहीसणु गुण-गणरउ सव्वेसउ णीइहें तणउ ।
गम्पि दसाणणु एम भणु 'विरुआरउ पर-तिय-गमणु ॥१॥
जो पर-दार रमइ णरु मूढउ । अच्छइ णरय-महण्णवें बूडउ ॥२॥
पर-दारेण सि-अत्थु विणट्ठउ । अहवइ चिरु दाव-वणें पइट्ठउ ॥३॥
परदारहों कज्जेण कमकासणु । तक्खणेण थिउ सो बब्बरासणु ॥४॥
परदारहों कज्जेण सुर-सुन्दरु । सहस-णयणु किउ अमर पुरन्दरु ॥५॥
परदारहों कज्जेण मियङ्कहु । किउ स-कलङ्कु णवर मयलञ्छणु ॥६॥
परदारहों कज्जेण महसामरु । वर-णाहिएँ अहूरउ विरस्सरु ॥७॥
परदारहों कज्जेण कुल-दीवहों । कीचउ हिउ मालासुग्गीवहों ॥८॥
अण्णु वि करि थिर जो उम्मेट्ठउ । मणु परदारें को ण वि णट्ठउ ॥९॥

घत्ता

अप्पाहिउ लक्खण-रामेंहिं जिण-परिहव-पव-बोलएँहिं ।
पेसवेसहि रावणु पडिवउ अण्णेंहि दियहेंहिं थाणएँहिं' ॥१०॥

[६]

तं णिसुणेंवि बोल्लिउ-अणेण मारुइ पुणु विहीसणेण ।
'ण गणेमइ जं चविउ पइँ समप्पउ सिक्खविउ मइँ ॥१॥
तो वि महारउ ण किउ णिवारिउ । पढमभिडउ मयरणिा विसारिउ ॥२॥
ण गणइ जिण-भासिय-गुण-वयणइँ । ण गणइ दुम्बोलिक-मणि-रयणइँ ॥३॥
ण गणइ मरइ परियणु आसन्नउ । ण गणइ पडहु पसरहों अन्धउ ॥४॥
ण गणइ रिद्धि विद्धि णिय सम्पय । ण गणइ गरुआगमण महागय ॥५॥

प्रयत्नसे सीता उन्हें अर्पित कर दो, कि जबतक उन्होंने धनुष नहीं चढ़ाया और जब तक युद्धमें रामके दुर्धर अजेय वीर नहीं आते ॥१–८॥

[४] और भी विभीषण ! नीतिका भी यह गुणवन्त सदृश है कि जाकर उस रावणसे यह कहा कि परस्त्री-गमन बहुत बुरा है, जो मूर्ख परस्त्रीका रमण करता है वह नरकरूपी महासमुद्रमें पड़ता है। परस्त्रीसे शिवजी नष्ट हो गये उन्हें स्त्रीरूप धारण करना पड़ा ?? परस्त्रीके फलसे ब्रह्माके तत्काल चार मुख हो गये सुरसुन्दर इन्द्रके परस्त्रीसे हजार आँखें हो गईं। परस्त्रीके कारण ही लाञ्छन रहित चन्द्रमाको सकलंक होना पड़ा। परस्त्रीके फलसे वेधारी आगको निरंतर जलना पड़ रहा है। परस्त्रीके फलसे ही कुलदीपक मायासुग्रीव (सहस्रगति) को अपने जीवनसे हाथ धोना पड़ा। और भी जो महाबलसे हीन मृगजकी तरह है, बताओ ऐसा कौन परस्त्रीसे नष्ट नहीं हुआ। तुम थोड़े ही दिनोंमें देखोगे कि अपने पराभवरूपी पटको धारण करने वाले राम-लक्ष्मणसे आहत होकर रावण पड़ा है।

[५] यह सुनकर विभीषणका मन काँप उठा। उसने हनुमान को बताया कि रावण कुछ समझता ही नहीं। जो कुछ आप कह रहे हैं, उसकी मैंने उस भी धार शिक्षा दी। तो भी महासक्त वह इस बातका निवारण नहीं करना चाहता। कामाग्निसे वह अत्यन्त जल रहा है। वह जिनभाषित गुण-वचनोंको भी कुछ नहीं गिनता। इन्द्रजीत मन्त्रि-वर्गोंको भी वह कुछ नहीं समझता। नष्ट होते हुए पर और परिजनको भी वह कुछ नहीं गिनता। वह नहीं देख पा रहा है कि उसकी (लंका) नगरी प्रलयमें जा रही है। वह ऋद्धि-वृद्धि और संपदाको भी कुछ नहीं समझता।

वह गरजते हुए मदगजोंको कुछ नहीं समझता और न सुवर्ण समुज्ज्वल सुन्दर रथको। प्राकार सनूपुर शरीर अपने अन्तःपुर को भी कुछ नहीं गिनता। उद्यान-जल-क्रीडाको कुछ नहीं गिनता और न यान जम्पाण और विमानोंको ही कुछ समझता है। केवल एक सीतादेवीके मुखकमलको सब कुछ मानता है। यदि मैं कुछ कहता भी हूँ तो उसे वह विपरीत लेता है। यह सब होने पर भी वह अपने आपको इस कर्मसे विरत नहीं करता तो सुनना हनुमान तुम्हारे सम्मुख ही मैं युद्ध प्रारंभ होते ही रामका सहायक बन जाऊँगा ॥१-१०॥

[७] यह सुनकर पवनपुत्र हर्षसे भर उठा। उसकी बाहुओंमें पुलक हो रहा था। वहाँसे लौटकर विशालमुख हनुमान फिर उद्यानकी ओर गया। अवलोकिनी विद्यासे समस्त नगरकी व्याज समझ कर सूर्यास्त होते होते उसने विशाल नन्दन वनमें प्रवेश किया। यह वन सुन्दर कल्पवृक्षोंसे आच्छन्न और मल्लिका तथा कंकेली वृक्षोंसे सुन्दर था। लवलीलता लवंग, नारंग चंपा बकुल, तिलक पुन्नाग, तरल तमाल, ताल खाजूर, मालती मातुलिंग, माकूर मूर्व पलाश द्राक्ष खजूर, पुत्र, देवदारु, कपूर वट करमर कर्मण करवद एला, कंकोल सुगन्ध चन्दन, वदन और साहार ऐसे ही अनेक वृक्षोंसे यह सहित था। उस वनके मध्यमें हनुमानको उन्मन सीतादेवी ऐसी दीख पड़ी मानो आकाश-पथमें दोजकी चन्द्रलेखा ही उदित हुई हो ॥१-१०॥

[८] हजारों सखियोंसे घिरी हुई सीता ऐसी लगती थी मानो वनश्री ही अवतरित हुई हो। (भला) जिसमें तिल बराबर भी खोट न हो फिर उसका वर्णन किस प्रकार किया जाय।

सृष्टिके एकसे एक उत्तम उपादानोंसे उनकी रचना हुई थी। सीता देवीके चरणतल, पद्मनारीकी स्त्रियोंके चरणतलोंसे। नख, मान्य शाल्मलि सिंहलनियोंके नखोंसे। अँगुलियाँ चेदककी स्त्रियोंकी ऊँची पूरी अँगुलियोंसे। एड़ी गांधारकी स्त्रियोंकी गोल एड़ियोंसे। स्तनका अग्रभाग, मालविकाओंके उत्कृष्ट स्तनाग्रसे। मदन द्वीपवतकी कन्याओंके मंडनसे। ऊरू, नेपालकी महिलाओंके ऊरुयुगलसे। कटि, करहाटकी स्त्रियोंके कटिमंडलसे। श्रोणि, कांचीकी महिलाओंकी श्रोणिसे। नाभि, गभीर देशकी स्त्रियोंकी गभीर नाभिसे। पुट्ठे, शृंगारिकाओंके सुन्दर पुट्ठोंसे। भुजशिखर पश्चिम देशीय स्त्रियोंके भुजशिखरसे। बाहु, द्वारवतीकी स्त्रियोंके सुन्दर बाहुओंसे। मणिबन्ध, सिंधुदेशकी स्त्रियोंके सुन्दर मणिबन्धोंसे। ग्रीवा कच्छमहिलाओंकी उन्नत ग्रीवासे। ठुड्डी गांधार महिलाओंकी सुन्दर ठुड्डीसे। दाँत कर्नाटक देशकी स्त्रियोंके सुन्दर दाँतोंसे। जीभ, कीरादेव देशकी सुन्दर स्त्रियोंकी जीभसे। नाक और नेत्र तुरुष्कदेशीय स्त्रीकी नासिका और नेत्रोंसे। भौंहें उज्जैनकी स्त्रीकी भौंहोंसे। भाल चित्तौड़की महिलाओंके भालसे। कपोल काशी देशकी आदरणीय स्त्रियोंके कपोलोंसे। कान कर्नाटककी स्त्रियोंके सुन्दर कानोंसे। केश कामोदी महिलाओंके केशसे। विनय दक्षिण देशकी महिलाओंकी विनयसे निर्मित हुई थी। अथवा सीतादेवीके अंग-प्रत्यंग अपने अपने निर्दिष्ट उपमाओंसे मिलते जुलते थे। अथवा बहुत विस्तारसे क्या सीतादेवीका रूपसौन्दर्य ऐसा था कि मानो सुन्दर बुद्धि विधाताने एक एक वस्तु लेकर उसे गढ़ा हो॥८-१६॥

[६] (हनुमानने देखा कि) रामके वियोगसे दुःमन सीता देवीकी आँखें भरी हुई थीं। उनके केश मुक्त और हाथ गालोंपर

सृष्टिके एकसे एक उत्तम उपादानोंसे उनकी रचना हुई थी। सीता देवीके चरणतल, पद्मनारीकी स्त्रियोंके चरणतलोंसे। नख, माम्ब शाखी सिंघलनियोंके नखोंसे। अँगुलियाँ बब्बरकी स्त्रियोंकी ऊँची पूरी अँगुलियोंसे। एड़ी गोल्लक स्त्रियोंकी गाल एड़ियोंसे। स्तनका अग्रभाग, मालवनिकाओंके उत्कृष्ट स्तनाग्रसे। मदन भीपवतकी कन्याओंके मदनसे। ऊरू, नेपाली महिलाओंके ऊरुयुगलसे। कटि, कर्णाटकी स्त्रियोंके कटिमंडलसे। श्रोणि, कश्मीरकी महिलाओंकी श्रोणिसे। नाभि, गंभीर देशकी स्त्रियोंकी गंभीर नाभिसे। पुट्ठे, नगारिकाओंके सुन्दर पुट्ठोंसे। भुजशिखर, पश्चिम देशीय स्त्रियोंके भुजशिखरसे। बाहु द्वारवतीकी स्त्रियोंके सुन्दर बाहुओंसे। मणिबन्ध सिंधुदेशकी स्त्रियोंके सुन्दर मणिबंधोंसे। ग्रीवा कच्छदमहिलाओंकी उत्तम ग्रीवासे। ठुड्डी गांगाल महिलाओंकी सुन्दर ठुड्डीसे। दाँत कर्नाटक देशकी स्त्रियाके सुन्दर दाँतोंसे। ओंठ कारोहव देशकी सुन्दर स्त्रियोंकी ओंठसे। नाक और नेत्र गुजरदेशीय स्त्रीकी नासिका और नेत्रोंसे। भौंहें उज्जैनकी स्त्रीकी भौंहोंसे। भाल चित्तौड़की महिलाओंके भालसे। कपोल काशी देशकी आदरणीय स्त्रियोंके कपालोंसे। कान कन्नौजकी स्त्रियोंके सुन्दर कानोंसे। केश, कामोली महिलाओंके केशसे। विनय, दक्षिण देशकी महिलाओंकी विनयसे निर्मित हुई थी। अर्थात् सीतादेवीके अंग-प्रत्यंग अपने अपने निर्दिष्ट उपमाओंसे मिलते जुलते थे। अथवा बहुत विस्तारसे क्या सीतादेवीका रूपसौन्दर्य ऐसा था कि मानो सुन्दर बुद्धि विधाताने एक एक वस्तु लेकर उसे गढ़ा हो ॥१-१६॥

[६] (हनुमानने देखा कि) रामके वियोगसे दुमन सीता देवीकी आँखें भरी हुई थीं। उनके केश मुक्त और हाथ गालोंपर

थे। वह एकदम कांतिहीन हो रही थी। सीताका अविकसित मुखकमल भ्रमरमालाको सुख नहीं दे रहा था। वह उसे मारती पर वह हटती ही नहीं थी, उल्टे सीतादेवीके करकमलसे लग आती थी। (इस प्रकार) हनुमान्‌ने देखा कि एक तो वह भ्रमरों से सताई जा रही है और दूसरे वियोगदुखसे सघन वनमें बैठी हुई ऐसी लग रही है मानो समस्त नदियोंके बीचमें गंगा नदी हो। (उन्हें देखकर) हनुमान सहसा हर्षित हो उठा। (उसने अपने मनमें सोचा) कि एक रामका ही जीवन इस विश्वमें धन्य है कि जिसको माननेवाली ऐसी सुन्दर स्त्री है कि जिसपर रावण मर रहा है और जो स्वयं अलङ्कारहीन होकर भी अत्यन्त शोभित है। यदि इसे अलंकृत कर दिया जाय तो यह त्रिभुवनका मोह ले सकती है। इस प्रकार सीताके रूपका वर्णन कर अपने-आपको आकाशमें अन्तर्निहित कर, हनुमानने वह अंगूठी नीचे गिरा दी जो रावणने भेजी थी। हर्षकी पोटलीकी भाँति वह जानकी की गोदमें जा गिरी ॥१-१०॥

[१०] रामकी अंगूठी देखकर सीतादेवी हर्षाभिमुख होकर कोमल-कोमल हँसने लगीं। (यह देखकर) उनकी सहेलियोंका भाग्य बढ़ने लगा। (बस) त्रिजटाने तुरन्त जाकर रावणसे कहा "आज तुम्हारा जीवन सफल है, आज तुम्हारा राज्य निष्कंटक हो गया। आज तुम्हारे दस मुख सार्थक हैं। आज तुमने हे देव चौदह रत्न प्राप्त कर लिये। आज आप अपने छत्र और ध्वज-दण्ड ऊँचा कर दें। आज छहों खण्ड भूमिका भोग कीजिये। आज मत्त गजघटाका प्रसाधन किया जाय। आज ऊँचे अश्वोंपर सवारी कीजिए। देव आज आपकी प्रतिज्ञा पूरी हो गई। क्योंकि महारानी सीता देवी आज हँस रही हैं। शीघ्र ही अपना सुन्दर मांगलिक

सूत्र बदलवाइए। मैं तो नियम ही यह समझती हूँ कि वह आज आपको स्नेहपूर्वक आलिंगन दूँगी।" यह सुनकर रावण हर्षित हो उठा। उसको अङ्ग-अङ्गमें पुलक हो आया। इप अङ्ग-प्रत्यङ्गमें फूट-फूटकर इतना भर गया कि त्रिभुवनसन्तापकारी रावणके धारण करनेपर भी वह समा नहीं पा रहा था ॥११॥

[११] तब उसने देवी मन्दोदरीका मुख देखकर उससे कहा "शुभ जाओ। शीलनिष्ठ उसकी अभ्यर्थना करना जिससे वह मुझे आलिङ्गन दे।" यह सुनकर मनोभावको न जाननेवाली मन्दोदरी चली। उसके साथ सडोर और सनूपुर समस्त अन्तःपुर भी था। उस अन्तःपुरकी स्त्रियोंके मुखकमल खिले हुए थे। उनके नेत्र कुवलयदलकी भाँति आयत थे। उनकी चाल ऐरावतकी तरह मदमाती और मन्थर थी जो पर-पुरुषोंको सतानेवाली थी। सौभाग्यसे भरी हुई वे पीन स्तनोंके भारसे झुकी आ रही थीं। उनका सुन्दर शरीर मध्यमें कृश हो रहा था। उरस्थल और नितम्ब गम्भीर थे। पैर नूपुरोंसे झंकृत थे। झलमलाते हुए मोतियोंके हार पहने थीं। करधनीके भारसे झुकी हुई जो विभ्रम भ्रमङ्ग और विकारोंसे युक्त थीं। इस प्रकार रावणका अन्तःपुर चला। (वह ऐसा लगता था) मानो मानसरोवरमें भ्रमरसहित कमलिनी वन ही खिला हो ॥१०॥

[१२] रावणके नेत्रोंको शुभ लगनेवाली उन्नत और पीन-पयोधरोंवाली उन स्त्रियोंके बीचमें सीता देवी इस प्रकार दिखाई दी मानो नदियोंके बीचमें समुद्रकी शोभा दृष्टिगत हुई हो। सीता देवी चन्द्रज्योत्स्नाकी तरह अकलङ्क, अमृतकी तृष्णाकी तरह तृप्ति रहित जिनप्रतिमाकी तरह निर्विकार रतिविधिकी तरह विज्ञान-कौशलसे निर्मित अहो जीवनिकायोंकी जीव-दयाकी भाँति

स-पओहर पाउस-सोहा इव । अविचल सप्पसाह वसुहा इव ॥५॥
कन्ति-समुज्जल तडि-माला इव । मज्झ-खीण डमरुअ-वेला इव ॥६॥
निम्मल कित्ति व रामहों केरी । तिहुयणु भमेँवि परिट्ठिय सेरी ॥७॥

घत्ता

भड्डारए सुमइ-सहासएँ सीयएँ पासु समल्लियउ ।
ण सरयहों सिरिएँ विसल्लएँ सव्वत्तएँ पउमिणियएँ ॥८॥

[११]

गम्पिणु पासेँ वइसरेँवि कमलें चारु-सयाएँ करेँवि ।
रावण-परिणि विसोयरिएँ संबोहिय मन्दोयरिएँ ॥१॥
'एक्कें एक्कें सीएँ सीएँ किं सुत्ती । भञ्जहि दुम्म-महल्लएँ सुत्ती ॥२॥
एक्कें एक्कें सीएँ सीएँ करि सुरउ । कइ चूडउ कण्ठउ कडिसुत्तउ ॥३॥
एक्कें एक्कें सीएँ मार्एँ कइ जाणहि । कइ कप्पइँ तम्बोलु समाणहि ॥४॥
एक्कें एक्कें सीएँ सीएँ सुण्णु वयण्णइँ । कज्जु पसाहहि भञ्जहि भवणइँ ॥५॥
एक्कें एक्कें सीएँ सीएँ कइ दप्पणु । जुहि निवहहि जोयहि अप्पणु ॥६॥
एक्कें एक्कें सीएँ सीएँ अविओलें हि । चडु गयवरें हि मिढा-मिढावें हि ॥७॥
एक्कें एक्कें सीएँ सीएँ अणुरुहिं हि । चडु चडुलें हि दिसन्त-तुरङ्गें हि ॥८॥
एक्कें एक्कें सीएँ सीएँ मणि पुज्जहि । माणुस जम्महों फलु मणु भुञ्जहि ॥९॥

घत्ता

पिउ इच्छहि पहु पडिच्छहि कइ सव्वावें हसिउ पईं ।
तो कइ महएवि-पसायहु अब्भरियउ पुणउ मइँ ॥१०॥

[१२]

तं णिसुणेवि विदेह-सुय पभणइ पुलय-विसट्ट-भुअ ।
'भच्चउ इच्छमि दहवयणु जइ जिण-सासणें करइ मणु ॥१॥
इच्छमि जइ महु मुहु ण निहालइ । इच्छमि अणुवयाइँ जइ पालइ ॥२॥
इच्छमि जइ महु मासु ण भक्खइ । इच्छमि जिणय-सीलु जइ रक्खइ ॥३॥
इच्छमि जइ भोयउ मग्गीसइ । इच्छमि जइ पर-धणु ण हिंसइ ॥४॥

अभय प्रदान करनेवाली, लताकी तरह अभिनव कोमल रंगवाली, विद्युत्की तरह कान्तिसे समुज्ज्वल, समुद्रवेलाकी भाँति मद और लावण्यसे भरपूर, रामकी कीर्तिकी तरह निर्मल और शिलामें स्थित श्यामाकी तरह सुन्दर थी। अठारह हजार युवतियाँ आकर सीता देवीसे इस तरह मिलीं मानो सौन्दर्यके सरोवरमें कमल ही खिल गये हों ॥ १८ ॥

[१९] मन्दोदरी आकर सीता देवीके निकट बैठ गई। सैकड़ों प्रकारसे चाटुता करके उसने सीतादेवीको सम्बोधित करते हुए कहा—"हला हला सीता! तुम मूर्ख क्यों बनती हो। अब तुम दुःखके महासमुद्रसे मुक्त हो चुकी। हला-हला सीता-सीता! तुम मेरा कहना मानो। यह चूड़ामणि कण्ठा और कटिसूत्र ले लो। हला-हला सीता-सीता! यदि जानती हो तो इन चीजोंका मान सम्मान करो। हला-हला सीता-सीता! हमारी बात सुनो। अंगोंको मजा लो। और भोग लो। हला-हला सीता-सीता दर्पण ले लो। चूड़ियाँ पहन लो अपनेको दर्पणमें देखो। हला-हला सीता-सीता पर्वतोंका भोग करो और अपने मनुष्यजीवनको सफल बनाओ। जिसका रूप बड़ा महादेवीके पदकी कामना करो। जो तुम आज यदि महादेवी बनी हो तो लो महादेवीपद प्रसाद करो! मेरी इतनी ही अभ्यर्थना है ॥ १९ ॥

[२०] यह सुनकर विरहक्षुब्ध जानकीकी बाहुओंमें रोमांच हो आया। उन्होंने कहा कि मैं चाहती हूँ कि रावण जिनशासनमें अपना मन लगाये। मैं चाहती हूँ कि वह मुझसे न डरे। मैं चाहती हूँ कि वह अणुव्रतोंका पालन करे। मैं चाहती हूँ कि वह मधु और मांसका भक्षण न करे। मैं चाहती हूँ कि वह अपने शीलकी रक्षा करे। मैं चाहती हूँ कि वह भयभीतोंको अभयदा

दान दे। मैं चाहती हूँ कि वह परस्त्रीके सेवनसे बचे। मैं चाहती हूँ कि वह प्रतिदिन जिनदेवकी अर्चा करे। मैं चाहती हूँ कि वह कषायोंको समाप्त कर दे। मैं चाहती हूँ कि वह अपने परमात्मकी ध्यान करे। मैं चाहती हूँ कि वह प्रतिमाओंका आदर करे। मैं चाहती हूँ कि वह जिनकी पूजा निकलवाए। मैं चाहती हूँ कि वह अभयदान दे। मैं चाहती हूँ कि वह तपश्चरण करे। मैं चाहता हूँ कि वह तीन बार (दिनमें) जिनदेवकी वंदना करे। मैं चाहता हूँ कि वह अपने मनकी निन्दा करे। हे मन्दोदरी मैं यह भी चाहती हूँ कि विशाल युद्धोंमें समर्थ रामके चरणोंमें गिरकर वह (रावण) मुझ (सीता) उन्हें सौंप दे ॥१–१ ॥

[१५] किसी कारणवश यदि वह मुझे रघुनन्दन रामको नहीं सौंपना चाहता तो इच्छा मैं यही चाहती हूँ कि वह मुझे समुद्र में फेंक दे। मैं चाहती हूँ कि यह नन्दन वन नष्ट-भ्रष्ट हो जाय। मैं चाहती हूँ कि यह लंका नगरी आगमें भस्मसात् हो जाय। मैं चाहती हूँ कि निशाचर सेनाका अन्त हो। मैं चाहती हूँ कि यह भवन पातालमें धँस जाय। चाहती हूँ कि दशानन रूपी यह वृक्ष नष्ट-भ्रष्ट हो जाय। चाहती हूँ कि रामके तीर उसे छिन्न-भिन्न काट डालें। चाहती हूँ कि रावणके दसों सिर वैसे ही कट कर गिर जायँ जैसे हंसोंसे कुतरे कमल सरोवरमें गिर पड़ते हैं। चाहती हूँ कि उसका अंतःपुर क्रन्दन करे, उसकी केशराशि बिखरा हो और दहाड़ मार कर रोये। चाहती हूँ कि उसका ध्वज-चिह्न छिन्न-भिन्न हो जाय। चाहती हूँ कि वह नाच उठे और चाहती हूँ कि चारों ओर सुभटोंकी धुआँधार चिताएँ जल उठें। इच्छा जो जो मैं कहती हूँ वह सब सच है। मैं तो विश्वास करती हूँ। देखो यह रामकी अंगूठी आई है। यह मेरे सब मनोरथोंको पूर्ण करनेवाली है और तुम्हारे लिए दुःखकी पोटली है ॥१–१०॥

[१६] यह सुनकर परावलके कुम्भस्थलकी तरह पीन स्तनोंवाली मन्दोदरीका मन विरुद्ध हो उठा। राम और लक्ष्मण की प्रशंसासे उसकी क्रोधाग्नि भड़क उठी। वह बोली, "मर-मर, कहाँ राम और कहाँ लक्ष्मण तू आज ही रावणका क्रुद्ध पायेगी। अपने इष्टदेवका स्मरण कर ले। तेरा मांस काटकर भूतोंको दे दिया जायगा। तुम्हारे नाम तककी रेखा पोंछ दी जायगी। जिससे तू न तो रावणकी होगी और न रामकी।" यह कहकर मन्दोदरी शत्रु-विरोधी शूल लेकर दौड़ी। ज्वालमालिनी विषकी ज्वाला और भयंकरा कराल करवाल लेकर दौड़ी। बिजलीकी तरह चमकते वरणकी विद्युत्प्रभा रक्तकमलकी तरह नेत्रवाली दशनावली और अश्वमुखी हिनहिना कर उठी। गजमुखी गरजती हुई आई। उन भीषण स्त्रियोंकी उस भयंकर सेनाको देखकर काल और कृतान्तने भी अपने प्राण छोड़ दिये। परन्तु उस घोर संकट काल में, राम और लक्ष्मणके बिना भी दृढ़ शीलके बलसे सीताका हृदय जरा भी नहीं काँपा ॥ १-१० ॥

[१७] तब उस भयंकर उपसर्ग और सीता देवीकी दृढ़ताको देखकर हनुमानकी भुजाएँ पुलकित हो उठीं। वह उनकी प्रशंसा करने लगा कि संकटमें जीवनका अन्त आ पहुँचनेपर भी इस धीराने धीरज रक्खा। स्त्री होकर भी सीता देवीमें जितना साहस है, उतना पुरुषोंमें भी नहीं होता। इस अत्यन्त विधुर समयमें भी जब कि स्वामी रामकी पत्नी मर रही है यदि मैं अपने आपको प्रकट नहीं करूँ तो मेरा अहंकार और अभिमान नष्ट हो जायगा" यह सोचकर हनुमानने अपने हाथमें गदा ले लिया और पीत वस्त्र पहनकर वह चल पड़ा। वह ऐसा लग रहा था मानो पुष्पित कनेर-पुष्पोंका समूह हो या स्वर्ण-पुंज हो। (इस प्रकार)

मन्दोदरी और सीता देवीमें कलह बढ़नेपर, सुवन-सौन्दर्य हनुमान उनके बीचमें जाकर इसी प्रकार खड़ा हो गया जिस प्रकार उत्तर और दक्षिण भूमियोंके मध्यमें विन्ध्याचल पर्वत खड़ा है ॥१-८॥

[१८] हनुमानने (गरजकर) कहा, "मन्दोदरी, तू दुष्टबुद्धि महासती देवीके पाससे दूर हट, मैं, शत्रुसेनाके लिए समर्थ राम और लक्ष्मणका भेजा दूत हूँ। मैं वही रामका दूत हूँ और रामकी अँगूठी लेकर आया हूँ। बन सके तो मुझपर प्रहार करो पर सीता देवीके पाससे दूर हट।" यह सुनते ही निशाचरी मन्दोदरी एकदम क्रुद्ध हो उठी। वह बोली "सुन अच्छा विशेष पुण्य तुमने खोया हनुमान? कुत्ता लेकर (वास्तवमें) तुमने सिंह छोड़ दिया। गधेको पकड़कर उत्तम अश्वका त्याग कर दिया। जिनवरको छोड़कर कुदेवकी पूजा की। बकरा लेकर गजवर छोड़ दिया। मित्र तुमने बहुत बड़ी भूल की है। तुम्हें हमारा एक भी उपकार याद नहीं रहा जो इस प्रकार रावणको छोड़कर रामसे मिल गये (मित्रता कर ली)। (उस रामके साथ) कि जिसका नाम सुनकर भी लोग मजाक उड़ाते हैं उसका दूतपन कैसा। जो तुम कटक मुकुट और कटिसूत्रोंसे सदैव सम्मानित होते रहे, वही तुम्हें इस समय चोरोंकी तरह राजपुत्र मिलकर बाँध लेंगे।" ॥१९॥

[१९] यह सुनकर हनुमान दावानलकी तरह (सहसा) प्रदीप्त हो उठा। उसने कहा "तुमने जो रामकी निंदा की, सो तुम्हारी जीभके सौ-सौ टुकड़े क्यों नहीं हो गये। निशाचररूपी वन-तृण और वृक्षोंके लिए जो अत्यन्त भयङ्कर और धक-धक करता हुआ दावानल है, और कल्पान्तकाल बहता हुआ वरुणमय रूपी पवन

जिसका सहायक है। जिसके निनादसे आकाश भी फट उठता है, भला उस रामके विरुद्ध कौन बच सकता है। लक्ष्मणकी जिस समय अरदूषणसे लड़ाई हुई थी क्या उस समय उसका पराक्रम समझमें नहीं आया। जिन्होंने अविचल कोटिशिलाको उसी प्रकार विचलित कर दिया जिस प्रकार मदमत्त गज लक्ष्मी का। रामने साहसगतिको हरा दिया है। दूसरा कौन उसके सम्मुख विश्वमें समर्थ है। यद्यपि रावण भी धराका लोभी है परन्तु उसने सुन्दर शील प्राप्त नहीं किया। फिर दूसरोंकी स्त्रियोंका हरनेवाले रावणकी शरणमें जाकर कौन उसका सहायक बनना चाहेगा। और भी तुम जिस रावणको नव कामके बाणसे पूरित अभिमान युक्त हो उस भवन पतिका यह दुर्दीपम कैसा ?" ॥१ १०॥

[२०] इस प्रकार जब हनुमानने रामकी प्रशंसा और रावण रूपी समुद्रकी निन्दा की तो निशाचरी मन्दोदरी उसी प्रकार कुपित हो उठी मानो आकाशमें बिजली ही चमकी हो। वह चिल्लाकर बोली भरे-भरे पहलेसे गर्वित इसे मारो मारो, अपने शस्त्रोंपर दम रख, यदि कल ही तुझे न बँधवा दिया तो अपने गात्रको कलंक लगाऊँ और रावणकी पत्नी न कहलाऊँ, तथा जिनेन्द्र देवको नमन न करूँ।" यह कहकर मन्दोदरी फुफकारकर ऐसे चली मानो समुद्रकी धरा ही उछल पड़ी हो। जिस प्रकार प्रथमा विभक्ति शेष विभक्तियोंसे घिरी रहती है उसी तरह वह रावणकी दूसरी पत्नियोंसे घिरी हुई थी। इन्द्रधनुष और तारागणके अनुरूप नूपुर और हार उसके खण्डित होते गिरते पड़ते वह अपने भवनमें पहुँच गई ॥१-८॥

विवाह कर था। पर वास्तवमें वह विद्याधरी थी बादमें वह किलकारी मारकर हमारे ऊपर ही दौड़ी। परन्तु (कुमार लक्ष्मणकी) तलवार सूर्यहास देखकर वह वैसे ही एकदम त्रस्त हो उठी मानो व्याधके तीरोंसे आहत कुरंगी ही हो। एक और विद्याधरने सिंहनाद किया और इस प्रकार मेरा अपहरणकर मुझे रामसे अलग कर दिया। फिर लक्ष्मण कहाँ राम कहाँ, और कहाँ यह दुष्काय! जान पड़ता है कोई उससे मेरा प्रियकर मेरा मन मारना चाहता है। ॥१-१०॥

[२] अच्छा मैं तबतक इससे कुछ कौतुक करती हूँ। देखूँ, यह क्या उत्तर देता है। (अपने मनमें यह सोचकर) सीतादेवीने पूछा—"अरे मनुष्य होकर भी तुम इतने समर्थ हो? आखिर तुमने लवण-समुद्र कैसे पार किया। यदि तुम निस्सन्देह रामके दूत हो तो तुमने समुद्र कैसे पार किया। हे वत्स! यह (समुद्र) मगर और घड़ियालोंसे भयङ्कर है, कच्छप मत्स्य और दुर्गम युक्त है। शिशुमार हाथी और मगरोंसे भरा हुआ है, पाताल सा योजनोंके विस्तारवाला या निम्ननिगादकी भाँति दुस्तर है। एक तो इसमें प्रवेश करना वैसे ही कठिन है, और फिर अंगारक आशालीकी विद्याका परकोटा है। सचमुच ही यह सब संसारकी तरह, या अपरिपक्वके लिए विषम प्रत्याहारकी तरह असाध्य है। इतनेपर भी उसका रक्षक इन्द्रके समान दुर्दान्त वज्रायुध है। और तुमने युद्धमें कम्पितापरा महासुन्दरीको किस प्रकार पराजित किया। इन सबसे बचकर तुम किस प्रकार लंका नगरीमें प्रविष्ट हो गये जिस प्रकार सिद्ध सिद्धपुरीमें प्रवेश करते हैं ॥१-१०॥

[३] इन बहुमूल्य बातोंको सुनकर हनुमानने उसको कहा "हे परमेश्वरी! क्या आज भी आपको सन्देह है, मैंने युद्धमें जैसा

पुत्रको मार गिराया है। लंकासुन्दरी भी मेरे वशमें है, उसी प्रकार जिस प्रकार हथिनी हाथीके वशमें हो जाती है। आसाली (आसालिका) विद्याको भी मैंने नष्ट कर दिया है। और इस समय मैं रावणका सामना करनेमें समर्थ हूँ। इतने पर भी आपको विश्वास न हो रहा हो तो मैं रामके दूसरे-दूसरे संकेतोंको बताता हूँ आप सुनिए। जब राम वनवासके लिए निकले तो वे दशपुर और नलकूबरके नगरमें प्रविष्ट हुए। नर्मदा विन्ध्याचल (होते हुए) और तापी नदीमें स्नान करके उन्होंने सत्वर रामपुरी नगरीके लिए प्रस्थान किया। जयपुर और नंद्यावर्त नगरका उद्यान नष्ट किया। वंशस्थल और वंशस्थल स्थानोंका अवलोकन किया। फिर गुप्त-सुगुप्त और जटायुका संनिवेश, सूर्यहास खड्ग, शम्बूक कुमार और चन्द्रनखाका प्रवेश, खर दूषणके समागमकी प्रवंचना, त्रिशिराका रण-चरित्र, तथा दूसरे-दूसरे दृश्योंके भी। ये तो उनकी पहचान की स्वाभाविक बातें हैं। निशाचरोंने और भी दूसरे-दूसरे छल किये हैं। क्या आपको अब शाकिनी विद्या, और सिंहनादके शब्दोंका पता नहीं है ॥१-९॥

[९] सुनिए जिस प्रकार जटायुका संहार हुआ और विद्याधर रत्नकेशी पराजित हुआ। साहसगति तीरोंसे छिन्न-भिन्न हो गया। सुग्रीव राजगद्दीपर बैठाया गया"। यह सुनकर सीता देवी को सन्ताप और विश्वास हो गया। उन्होंने कहा "साधु साधु, निश्चय ही तुम सुभट शरीर और रामके अनुचर हो।" बार-बार इस प्रकार हनुमानकी प्रशंसा करके सीता देवीने उस अंगूठीको अपनी उँगलीमें पहन लिया। कंकणमें छिपटी हुई वह ऐसी जान पड़ रही थी मानो मधुकर ही पद्ममें प्रविष्ट हो गया हो। स्तनमें चाँप पहरका इस प्रकार अन्त हो गया कि मानो

लंकामें धमका डंका पिट गया हो, मानो वह यह घोषणा कर रहा था कि अरे लोगों धमका अनुष्ठान करो, दूसरोंकी स्त्रीका विचार मत करो, सत्य बोलो, दूसरेके धनका अपहरण मत करो। यदि तुम यम-महिषसे बचना चाहते हो तो मद्य, मांस और मधुसे बचते रहो। यदि तुम संसारकी प्रवचनासे छूटना चाहते हो तो यह मत समझो कि यमराजका आज्ञाकारी एक प्रहर चला गया, अपितु तीखी नाड़ी रूपी कुठारोंसे दिन-प्रतिदिन आयु रूपी वृक्ष छिन्न हो रहा है॥१-१०॥

[७] मानो घन्टिका बार-बार अपने स्वरमें यही कहती है कि मैं तुम्हें उपदेश कर रही हूँ। जागो-जागो कितना सोते हो। मत्सर अभिमान और मानको छोड़ो। अपनी गलती हुई आयुको नहीं देख रहे हो। आयु इन नाड़ियोंके प्रमाणमें परिमित कर दी गई है। एक हजार आठसौ छियासी उच्छ्वासोंके बराबर एक नाड़ी होती है। नाड़ीका यही प्रमाण है, फिर दो नाड़ियाँ एक मुहूर्त जितने प्रमाण होती हैं। तीन हजार सात सौ अठहत्तर उच्छ्वासोंका प्रमाण होता है। एक मुहूर्तका परिमाण बता दिया। दो मुहूर्तोंका आधा प्रहर प्रसिद्ध है। वह भी सात हजार पाँचसौ छप्पनके उच्छ्वासोंके बराबर होता है। दो आधे प्रहरोंसे दिनके आधेका आधा भाग होता है। मुनिनिवास रूप यह पंद्रह हजार बावन उच्छ्वासोंके बराबर होता है। इस प्रकार हमने एक प्रहर प्रकट किया। और इसी तरह नाड़ी-नाड़ीका घड़ी बनती है। आठ साठ घड़ियोंसे एक दिनरात बनता है। आयुकी शक्ति इसी तरह क्षीण होती रहती है अत हमें जिनवरकी स्तुति करते रहना चाहिए॥१-१॥

[८] रातका चौथा प्रहर व्यतीत होनेपर (ऐसा लगा) मानो जगके किवाड़ खुल गये हों। तब, इसी प्रभातवेलामें त्रिजटाने रातमें देखा हुआ अपना सपना बताया। उसने कहा कि हला हला सखि लवली, हला लवंगी सुमना सुबुद्धि, तारा तरंगी हला, कक्कोली, कुवलयलोचना गन्धारी, गौरी, गोरोचना, विपुलप्रभा, ज्वालामालिनी, हला अरुणमुखी, राजमुखी, कंकालिनी, आज मैंने एक सपना देखा है कि एक योधा अपने उद्यानमें घुस आया है और उसने (उसके) एक-एक पेड़का नष्ट कर दिया है। वज्रकी भाँति उसने वन-विनाशका प्रदर्शन किया है। तब इन्द्रजीतने उसे उसी प्रकार पकड़कर बाँध लिया जिस प्रकार गुरुतर कषायें पापपिण्ड जीवको बाँध लेती हैं। उसे घेरकर नगरमें प्रविष्ट किया। परन्तु वह दशाननके मस्तकपर पैर रखकर चला गया। थोड़ी ही देरके बाद हर्षितशरीर उसने कुपुत्र की तरह घरका नाश कर डाला। इतनेमें एक और नरश्रेष्ठने सुरवधुओंकी शोभाका अपहरण करनेवाली लङ्कानगरीको तोरणसहित उखाड़कर समुद्रमें फेंक दिया॥११॥

[९] त्रिजटाके वचन सुनकर एक (सखी) के मनमें बधाई की बात उठी और उसने कहा "हला सखी! तुमने बहुत बढ़िया सपना देखा है मैं जाकर रावणको बताऊँगी। यह जो तुमने सुन्दर उद्यान देखा है वह सीताका यौवन है और जिसने उसका दलन किया है वह रावण है जो बाँधा गया वह भयानक शत्रु है और जो रावणके ऊपर दौड़ा वह ऐसा निर्मल यश है कि जो कहीं भी नहीं समा सका। और जो पृथ्वीका उपपर ध्वस्त हुआ वह रावणने ही शत्रु-सेनाका प्रहार किया। और जो लङ्कानगरीका समुद्रमें प्रक्षिप्त किया गया वह सीताका ही भागृहमें प्रवेश कराया

तं णिसुणेंवि जणमोह मयोहिय । गग्गर वयणी अंसु जलोल्लिय ॥७॥
अवसें सिविणउ होइ असुन्दरु । जहिं पडिवक्खहों पडिवउ सुन्दरु ॥८॥
मुणिवर-भासिउ ढुक्कु पमाणहों । जिह कइहिँ विणासु उज्जाणहों ॥९॥

घत्ता

एहु सिविणउ सावएँ सयलु वसु रामहों वि घर बलणहों ।
सहुँ परिवारें सहुँ बलेंण वण कालु पहुक्कु दसाणणहों ॥१०॥

[१]

तहिं अवसरें वाय पओहरिएँ अक्खुणामें कडुसुन्दरिएँ ।
हरे अइरउ णिम्मि सि पेसियउ दहवयणहों पासु पयसियउ ॥१॥
जहिं उज्जाणें परिट्ठिउ पावणि । सयलु पडिन्द विणय-चूडामणि ॥२॥
तहिं संपत्तउ णिम्मि वि तुरियउ । जं सिव-सासणें तवसिरि-तुरियउ ॥३॥
जं कम-कमउ णियमाणें दिट्ठउ । वणवर्जेप्पिणु पासें णिविट्ठउ ॥४॥
तेण वि तहिं समउ सिउ जम्पेंवि । कमलउ कमली-थामु समप्पेंवि ॥५॥
पुणु विण्णत्त दहविस-मणोहरि । 'मोक्खु तुम्ह केम परमेसरि' ॥६॥
जम्पइ सीय समीरण-पुत्तहों । 'वासर एक्कवीस महुँ भुत्तहों ॥७॥
जाम ण वत्त वत्त भत्तारहों । ताम णिवित्ति सयलु आहारहों ॥८॥
अज्जु अवर परिपुण्ण मणोरह । तं जें मोक्खु जं सुय रामहों वत्त' ॥९॥

घत्ता

तं णिसुणेंवि पवणहों सुएँण जणमोहणु पुणु अइरें तण्णउ ।
गम्पिणु मज्झु णिहालियहों तुरइ पीणहें करि पारणउ ॥१०॥

गया है।" यह सब सुनकर एक और दूसरी सखी अपनी आँखोंमें आँसू भरकर गद्गद स्वरमें बोली, "अवश्य ही यह सपना असुन्दर होगा। इसमें प्रतिपक्षका पक्ष ही सुन्दर होगा। मुनिवरका कहा सच होना चाहता है। उद्यानके विनाशकी तरह लंकाका विनाश होगा। यह सपना सीतादेवीके लिए सफल है क्योंकि इसके राम और लक्ष्मणकी इसमें विजय निश्चित है। अब रावणका अपने परिवार और सेनासहित क्षयकाल ही आ पहुँचा है॥१ १०॥

[१०] ठीक इसी अवसरपर पीनपयोधरोंवाली लंका-सुन्दरीने हनुमानका पता लगानेके लिए इरा और अचिराको भेजा। समस्त राजाओंमें श्रेष्ठ हनुमान जिस उद्यानमें घुसा हुआ था वे दोनों भी इस प्रकार वहाँ पहुँची मानो शिवस्थानमें सुगति और उपमी पहुँच गई हो या मानो जिनागममें क्षमा-दया रखी गई हों। हनुमानने उन दोनोंके साथ प्रिय आलापकर उन्हें कण्ठा और काँचीदाम दिया। और फिर उसने रामकी पत्नी सीतादेवीसे पूछा "हे परमेश्वरी! आपका भोजन किस प्रकार होगा।" यह सुनकर सीतादेवीने हनुमानको बताया कि मुझे भोजन किये हुए इक्कीस दिन व्यतीत हो गये। मेरी भोजनसे तब तकके लिये निवृत्ति है कि जब तक मुझे अपने पतिके समाचार नहीं मिलते। किन्तु आज मेरा मनोरथ पूर्ण है। और अब तो यही (एकमात्र) भोजन है कि रामकी कथा सुनाओ।" यह सुनकर हनुमान अचिराका मुख देखने लगा, उन्होंने कहा—कि विभीषणसे जाकर कहना कि वह सीतादेवीके लिए भोजन करनेकी सुविधा दें॥१ १०॥

[११] इस तू भी शीघ्र परमेश्वरी लंकासुंदरीके पास जा। लंकासुन्दरीका जहाँ घर है, वहाँसे सुन्दर भोजन ले आ ऐसा कि जो सुरतिके समान सरस और सस्नेह, और सुन्दर हो। यह सुनकर वे दोनों इस प्रकार चलीं मानो गंगा और यमुना ही चल पड़ी हों। रखा हुआ भात लेकर वे आईं। वे विख्यात सरस्वती और लक्ष्मीके समान जान पड़ती थीं। उन्होंने भोजनकी थालीमें सुन्दर सूक्ष्म पत्रके साथ भोजन परसा। शाक, खीर दूध, छवड़ नमक, गुड़ ईखुरस मिठाई भला? सोयवती? घेवर मूँगकी दाल, तरह-तरहके कूर विविध और विचित्र शालन विचित्र भाइंर और माइण फल, चिरमटा, कचार, वालुक, पेठल, पापड़ केला नारियल, जम्बीर, करमर करौंदा करीर, तरह-तरहकी कर्की खटमिट्ठी सालन भाजी तथा और भी खाद्य और गुड़का खारका बड़वाइण कारल्ल मही दही और खीरसे सहित व्यञ्जन तथा बघारे हुए कार्वीर और सौवीर उस भाजनमें थे। इस प्रकार, वह उल्लसित और मुँहमें मीठा लगाने वाला भोजन था। जो भी वहाँ उसे खाता वह जिनवरके वचनोंकी भाँति मधुरतम मालूम होता था ॥१ १४॥

[१२] उस वैसे भोजनको कर सीताने अपने मुखका प्रक्षालन किया। और उत्तम चन्दनके अवलेपके बाद हनुमानने सीतादेवीसे कहा "माँ मेरे कन्धेपर चढ़ जाओ। मैं वहाँ ले जाऊँगा जहाँ श्री राघव सिद्ध हैं। वहाँ मिलनेसे दोनोंके मनोरथ पूरे हो जायेंगे, और जनपदमें रामायणकी कथा भी फैल जायगी।" यह सुनकर सीतादेवी पुलकित हो उठीं। साधुवाद देकर उन्होंने हनुमानसे कहा "गतगुण बहूके लिए इस तरह अपने घर जाना चाहे ठीक हो परन्तु कुलवधूके लिए यह नीति

ठीक नहीं। हे वत्स अपने कुलघर भी जाना हो तो भी पतिके बिना जाना ठीक नहीं। फिर जनपदके लोग निन्दाशील होते हैं उनका स्वभाव दुष्ट और मन मलिन होता है। जहाँ जो बात अयुक्त होती है वे वहीं आशंका करने लगते हैं। उनके मनका रञ्जन इन्द्र भी नहीं कर सकता। इसलिए निशाचर दशाननका वध होनेपर 'जय जय शब्द' पूर्वक श्रीरामके साथ अपने जनपद जाऊँगी। हे वत्स! तुम जाओ मैं यहीं हूँ। लो यह मेरा चूड़ामणि। निर्मल दशरथकुल उत्पन्न श्री रामको पहचान (प्रतीक) रूप में यह अर्पित कर देना ॥११॥

[१२] और भी गुणधन उनका आलिङ्गनकर मेरा यह संदेश कह देना "हे राम तुम्हारे वियोगमें सीता देवी रेखाभर रह गई हैं। किसी प्रकार वह मरी मर नहीं यही बहुत है। वह (मैं) राहुग्रस्त चन्द्रलेखाकी तरह क्षीण हो गई। तपसे हीन इन्द्रकी ऋद्धिकी तरह क्षीण है। कुदेशमें निरासकी तरह वह क्षीण है। मूर्खके मुँहमें कविकी सुवाणीकी तरह क्षीण है। सूपदर्शन होनेपर निशाकी तरह क्षीण है। कुजनपदमें जिन भक्तिकी तरह क्षीण है। दुर्भिक्षमें अन्नसम्पदाकी भाँति क्षीण है। वह दरिद्रहीनकी कीर्तिकी तरह क्षीण है। खाटे घरमें कुलवधूकी तरह क्षीण है। युद्धमें दुर्वार वैरियोंको पराजित करने वाले कुमार लक्ष्मणसे भी मेरा यह सन्देश कह देना कि लक्ष्मण तुम्हारे रहते हुए भी सीता देवी रो रही है, न तो देवोंसे, न दानवोंसे, और न वैरीविदारक रामसे रावणका वध होगा। केवल तुम्हारे भुजयुगलसे रावणका वध होगा ॥१२॥

●

इक्यावनवीं सन्धि

लक्ष्मी-निकेतन, अस्त्रालंकृतमान हनुमान, सीतादेवीसे यह चूड़ामणि लेकर उस उद्यानसे वैसे ही चले जैसे कमल-वनसे ऐरावत हाथी जाता है। शत्रुकी विजय-लक्ष्मीका मर्दन करनेवाला वह अपने दोनों बाहु ठोककर सोचने लगा।

[१] आज मैं तब तक नहीं जाऊँगा कि जब तक रावणको ताप उत्पन्न न कर दूँ। मैं अभी—रसमसाते-कसमसाते वनको भग्न कर दूँगा, अनिष्ट ध्वनि करके धरतीपीठको भग्न कर दूँगा बड़ी-बड़ी चोटियोंवाले पर्वतों और वृक्षों सहित धरतीको खोद डालूँगा। समस्त दिशान्तरोंको रौंद डालूँगा, कलकी और लवली-लताको मैं छिन्न-भिन्न कर दूँगा। वट-विटप और ताड़का भी तहतहा दूँगा। करमर करीरको करकरा दूँगा। अश्वत्थ और अगस्त वृक्षोंको धरा दूँगा। बलपूर्वक सौ-सौ टुकड़े करके सप्तपर्णी पुष्प फलोंकी बहारको तुड़ा दूँगा। एक मुहूर्तके लिए मैं यहाँ यहाँपर घूम-फिर लूँ और सभी वृक्षोंको समूल उखाड़ फेकूँ। जैसे भी सम्भव होगा, आज इस वनको विलासिनीके यौवनकी तरह अवश्य दलित करके रहूँगा ॥१-६॥

[२] अपने मनमें बार-बार यह विचार करके सुन्दर हनुमान उस उपवनमें घुस गया। मानो ऐरावत महागज ही मान सरोवरमें घुसा हो। उपवनालयमें निम्बाव, अशोक नारंग पुंनाग, नाग लवंग प्रियंगु विडंग समुत्तुंगसमच्छद करमर करवन्द रक्तचन्दन दाड़िम देवदारु, दन्ती मूल दाख रुद्राक्ष पलाश अतिमुक्त सरलतमाल तालेल कक्कोल शाल विशालांजन, बकुल निम्ब सिरीष सिंदूर मन्दार, कुंदेंदु सज्ज, अर्जुन सुगन्ध, कदम्ब

कदम्ब जम्बीर जम्बुम्बर लिम्ब, कोशाम्म, खजूर, कपूर, तालूर, मालूर, अश्वत्थ, न्यग्रोध, तिलक, बकुल, चम्पक, नागवेल्ला तथा, पिप्पली, पुष्कली पाटली, केतकी, माधवी, सप्तनस, लवली श्रीखण्ड, मन्दागुरु, सिल्हिका, पुत्रजीव, सीरीप इल्लिक, अरिष्ट, कोशम्म भूर्ही नारिकेल, वर्ई, हरड हरिताल कवाल, लावलय, पिलक, कन्पूक कारन्ट चाणिस वेणु, विसकम्भ, मिरी, अम्लिका टीक, शिला, मधू, कनेर कणियारी, सेल्लू, करीर, करस, अमली कंगुनी कचना इत्यादि तथा और भी बहुतसे वृक्ष थे जिन्हें कौन समग्र गिना सकता है। उन सब बड़े-बड़े वृक्षोंमें सबसे पहले पारिजात वृक्ष था। उसने उसको धरतीके यौवनकी तरह, उखाड़कर आकाशमें घुमा दिया ॥१-१॥

[२] पारिजातको फेंककर उसने उस वृक्षको उखाड़ा और अपने बाहुओंसे उसे वैसे ही झुका दिया जैसे रावणने कैलाश पर्वतको झुका दिया था। धरतीसे हुए उस वट वृक्ष को उसने इस प्रकार (धरतीसे) खींचा मानो पातालमें कोई शत्रु प्रवेश कर रहा हो या मानो वह नभमण्डलकी सुन्दर शिखा हो या मानो धरतीका दूसरा बाहुदण्ड हो मानो रावण का अभिमानस्तंभ हो या मानो प्रसूतवती धरती का विशाल गर्भ हो। (आघातसे) उस महावृक्षकी जड़ोंका समूचा घनीभूत जाल छिन्न-भिन्न हो गया। प्रारोह टूट-फूट गये। विशाल शाखाएँ भग्न हो उठीं। डाल-डाल पत्तियाँ बिखर गईं। ढूँढर (राक्षस) और पक्षी कलरव करने लगे। कोपलोंके आलापसे वह गूँज उठा। झुका हुआ वह वट वृक्ष सज्जनकी भाँति सुन्दर प्रतीत हो रहा था। हनुमानकी भुजलताओंसे गृहीत वह वटवृक्ष ऐसा मालूम हो रहा था मानो गंगा और यमुनाके बीचमें यह तीसरा प्रयाग ही हो ॥१-८॥

[४] वटवृक्षको फेंककर, तब हनुमानने ककेली वृक्ष उखाड़ लिया, और उसे अपने दोनों हाथोंमें इस प्रकार ले लिया मानो बाहुबलिने भरतको ही उठा लिया हो। लाल-लाल पल्लव और पत्तोंसे शामिल वह वृक्ष कामिनीके करकमलोंकी भाँति दिखाई दे रहा था, खिले हुए फूलोंके गुच्छोंसे वह ऐसा लग रहा था मानो धरतीका केशरका अवलेप किया जा रहा हो, वह अशोक वृक्ष तरह-तरहके पक्षियोंसे सेवित हो रहा था। ऐसे गुणोंसे सहित उस अशोक वृक्षको हनुमानने मानो रावणका मान दलन करनेके लिए ही उखाड़कर फेंक दिया। फिर उसने नाग चम्पक वृक्ष अपने हाथमें लिया वैसे ही जैसे दिग्गजने विशालवृक्षको ले लिया हो। वह वृक्ष आकाशके अनुरूप प्रतीत हो रहा था। (आकाशकी भाँति) वह भ्रमर रूपी ज्योतिषचक्रसे गतिशील था और नये पल्लवोंके महसमूहसे व्याप्त था। खिले हुए सुमन ही उसका नक्षत्र मण्डल था। गगनाङ्गणमें व्याप्त उस वृक्षको रावणके अभिमानकी भाँति भग्न कर दिया। इसी प्रकार चंपक वृक्षको फेंककर, बकुल और तिलक वृक्षोंको खींचकर उसने धरतीको ताड़ित किया। (उस समय) वह ऐसा प्रतीत हो रहा था मानो मदान्मत्त महागजने अपने दाँतों आलानस्तम्भोंको उखाड़ दिया हो ॥१-१०॥

[५] चम्पक तिलक, बकुल वटपादप और पारिजातको जब हनुमानने भग्न कर दिया तो चार उद्यानपाल गरजते हुए सहसा उसकी ओर दौड़े। सबसे पहले शत्रुसेनाके बलको चूर करनेवाला वज्रायुध हाथमें गदा लेकर दौड़ा। वह उत्तर द्वारका रक्षक था और उसका यश भुवन भरमें प्रसिद्ध था। मदमाते गजोंका मसल देनेवाला और शत्रुपक्षमें हलचल उत्पन्न करनेवाला

वह स्वयं भस्त्रखण्डितमान था। विशालबाहु वह आकर, हनुमानसे इस प्रकार भिड़ गया मानो गंगाके प्रवाहसे यमुनाका प्रवाह टकरा गया हो। परन्तु उसने हनुमान पर जो गदा फेंकी, वह टूटकर सौ-सौ टुकड़े हो गयी। (यह देखकर) हनुमान पुलकपूर्वक हँस पड़ा और यह कहकर कि वनमगके बाद अब सुभट-विनाश दिखाऊँगा, उसने तुरन्त ताड़वृक्षको उखाड़ लिया। वह वृक्ष कुजनकी तरह 'सुरभाजन (मदिरा और देवताका पात्र) दृढ़मात्र, दूरफल (वृक्षसे कोई फल नहीं मिलता और ताड़वृक्षका भी फल नहीं होता) और बड़े कष्टसे झुकाने योग्य था। ऐसे उस तालवृक्षसे हनुमानने उस राक्षसका भी युद्धमें माहत कर दिया। धरतीपर गिरकर वह वैसे ही बिखर गया जैसे दुष्कालसे मस्त देश नष्ट-भ्रष्ट हो उठता है ॥१-१ ॥

[६] अब हनुमानने मत्सरसे भरे वज्रावलिको इस प्रकार युद्धमें नष्ट कर दिया तो एकदंत गरजकर उठा और उसपर ऐसे दौड़ा मानो गजवरके ऊपर गजवर ही दौड़ा हो। वह पूर्वद्वारका रक्षक था। (वह ऐसा आया) मानो यमकाल ही आया हो। उसकी देह दृढ़ और कठिन थी। वह शत्रुसेनाका प्राचीर तोड़नेमें समर्थ था। उसने अपनी शक्तिका नामलेकर उसे हनुमानपर ऐसे छोड़ा मानो पर्वतने समुद्रमें नदी प्रक्षिप्त की हो। तब युद्ध मुख और दुदर्शनीय हनुमानने उत्तम सहकार वृक्ष उखाड़ लिया। वह वृक्ष कामिनीके मुखकुहरके समान था, खूब पके हुए फल ही उसके अधर थे, कुसुम दाँत थे, नवपल्लव ही अपशब्दोंकी जिह्वा थी कोकिल कलरव ही उसकी मधुर तान थी। महाकविके काव्यकी तरह यह वृक्ष दलविशेष (शब्दरचना और पत्तियों) से युक्त तथा प्रकृष्ट रसविशेषसे पूर्ण था। हनुमानके करसे मुक्त उस

मरों के समान था। करवाल रूपी विद्युत उसके पास थी। टेढ़ी भौंहें इन्द्रधनुष की भाँति थीं। तब शंकायुक्त होकर वह हनुमान से आकर भिड़ गया। हनुमानने तब दृढ़मनसे चन्दनका वृक्ष उखाड़ा। वह वृक्ष, सत्पुरुष की भाँति क्षमाशील शरीर वाला था छेदन होने पर भी वह (सत्पुरुषकी भाँति) धीरता रखता था। उसका स्वभाव सत्पुरुषकी तरह शीतल था। सत्पुरुषकी भाँति वह अपने जनपदमें आदरणीय हो रहा था। सत्पुरुषकी भाँति ही वह सब लोगोंसे प्रशंसनीय था। उस प्रकार वृक्षके आघातसे मेघनाद वक्षस्थलमें आहत हो उठा। गदेसे आहत सप की तरह वह धरती पर लोट-पोट हो गया॥१-१०॥

[६] इस प्रकार जब हनुमानने चारों ही बड़े-बड़े उद्यान-पालोंको मार गिराया तो शेष रक्षकोंने दौड़कर सब वृत्तान्त रावणको सुनाया। (वे बोले) "अरे-अरे भूमिभूषण, भुवनपाल, मानव कुलोंके लिए काल, प्रबल भयंकर रणयुद्धमें अत्यन्त रौद्र, नरश्रेष्ठ जयसागर दानवों और इन्द्रका दमन करनेवाले, स्वग पथमें प्रविलप्रताप कामिनी-स्तन-मण्डलोंके मदनमें विदग्ध, संसारके अलंकार, महान गुणोंसे परिपूर्ण हे देव! आप निश्चिन्त क्यों बैठे हैं। अमर्षसे कुपित और प्रहारशील एक मनुष्यने दुर्जनके हृदयकी भाँति समूचा उद्यान उजाड़ डाला। उसने ताल तमाल और ताल वृक्षोंको उखाड़कर चारों ही उद्यानपालोंको मार डाला है।" ठीक इसी समय रावणके निकट यह खबर भी पहुँची कि उसने आशाली विद्याका समाप्त कर दिया है। यह सुनकर रावण बहुत ही क्रुद्ध हुआ। मानो किसीने आगमें घी डाल दिया हो। उसने कहा "किसने यमराजका स्मरण किया है किसने मेरा उद्यान उजाड़ डाला है" ॥१-९॥

[१०] यह सुनकर, रानी मन्दोदरीने भी हनुमानकी चुगली करते हुए कहा "हे देव, क्या आप किसी भी तरह यह नहीं समझ पाये। राजा महेन्द्रकी पुत्रीका पुत्र यही हनुमान है जिसकी माको पवनञ्जयने बारह बरसके लिए छोड़ दिया था। सास केतुमतीने मा गुप्त गर्भकी बात सुनकर और दुश्चरित्र समझकर अपने कुलगृहसे उसे निकाल दिया था। वह अपने घर (मायके) भी नहीं गई और वनमें कहीं जाकर उसको जन्म दिया। रूप पिता परोंने इसके लिए चारों ओर खोजा किन्तु यह पहाड़की गुफामें मिला, किसी दूसरी जगह नहीं। फिर हनुरुह द्वीपमें इसका लालन-पालन हुआ, इसीसे इसका नाम हनुमान पड़ गया। आपने भी अनंगकुसुमसे इसका उसी प्रकार विवाह किया है जिस प्रकार अशोकलतासे खिले हुए सुमनका सम्बन्ध होता है। परन्तु इसने (हनुमान ने) इन उपकारोंमेंसे एकको नहीं माना। प्रत्युत यह हमारे शत्रुओंका अनुचर बन बैठा है। अब यह सीता देवीके पास अंगूठी लेकर पहुँचा तो मेरे ऊपर भी गरज उठा। एक तो वनानके विनाशसे दशाननकी क्रोधाग्नि प्रज्वलित हो रही थी दूसरे मन्दोदरीने मानो यह सब कहकर उसमें सूखी घास और डाल दी ॥१-१०॥

[११] यह सुनकर (प्रचण्ड) रावण ने हाथियोंसे भयंकर और पराक्रमी मक, मृगांक और शक्र आदि बड़े-बड़े अनुचरों को आज्ञा दी। प्रणामपूर्वक आज्ञा लेकर और दृढ परिकरसे आबद्ध होकर वे (निशाचर) अपनी तैयारी करने लगे। सिंहकी तरह क्रुद्ध वे शत्रु-विजयके आकांक्षी थे। मणिमय मुकुट चमक रहे थे। और ऊँचे ऊँचे ओठ फड़क रहे थे। उनके दोनों नेत्र भयानक थे और बाहुएँ पुलकित हो रही थीं। उनका भाल भ्रूभंगसे कुटिल

हरिय व्व संछुहिय । सूर व्व बहु-रहय ॥८॥
अवरहि व्व सरवाह । सेल व्व संवाह ॥९॥
धणु-वेद धारन्तइँ । गमियाइँ पहरन्तइँ ॥१०॥
अण्णेण दुक्खि-दुक्खु । अण्णेण मम्म-सुक्खु ॥११॥
अण्णेण गय-वन्दु । अण्णेण कोवण्डु ॥१२॥
अण्णेण सर-जालु । अण्णेण करवालु ॥१३॥

घत्ता

पुण धसाहण-विहुरहुँ बहु सण्णेंवि सबलु सपीलिउ ।
पवण-अरोँ णं उवहि-जलु मिय-मज्झाय मुअन्तु पवोलिउ ॥१४॥

[१२]

दुवई

चोइय साहणे व्व कज्जा-ममरी आवा समागया ।
रहवर-गयवरोह-जम्पाण-विमाण- तुरङ्ग सङ्कुला ॥१॥
बलु कहि मि ण माइउ वीसरन्तु । संचल्लु पलोइय दरमलन्तु ॥२॥
घण चवल महदुम घायरन्तु । पड-पडह सङ्ख-मद्दल रसन्तु ॥३॥
विष्णु केवें पहरण-कर-करेहिँ । वणु वेढिउ राहव-किङ्करेहिँ ॥४॥
णं ससा-मण्डलु घण-घणेहिँ । णं तिहुअणु तिहि मि पहञ्जणेहिँ ॥५॥
तिह वेढेंवि रहवर-गयवरेहिँ । पचारिउ मारुइ णरवरेहिँ ॥६॥
णाणाय पलोइड जिह विमाणु । णाणाइउ हउ रमैं कोडुमाणु ॥७॥
वम पास चडिउ वणु भग्गु जम । णम सुर पिसुण मव पढक ठमं ॥८॥
णं विमुञ्चेवि पाइउ पवण-जाउ । कमिरम्म-णयर धावइ महाउ ॥९॥

घत्ता

पवण-विसल्ल मारुइण रिउ-साहणु बहु वाण-समारिउ ।
णं मीढण विसहरेंण भवगण वहु डिम्भहि ओसारिउ ॥१०॥

हो रहा था। उनकी कृपाणें उठी हुई थीं। महागज की भाँति वे अत्यन्त क्षुब्ध थे। सूर्यकी तरह अनेक रूपोंमें वे प्रकट हो रहे थे। समुद्रकी तरह उछल रहे थे। और पर्वतोंकी भाँति चल-फिर रहे थे। दानवोंके शरीरको विदीर्ण करनेवाले, वे हथियार लिये हुए थे। किसीके पास हलि और हुलि अस्त्र थे। कोई मूसल और शूल लिये था। कोई गदा और दण्ड लिये था। कोई धनुष लिये था, कोई सब्बल और कोई एक करवाल लिये था। रावणके अनुचरोंकी समस्त सभा इस प्रकार सन्नद्ध होकर चल पड़ी मानो समुद्रका जल ही प्रलयकालमें अपनी मर्यादा छोड़कर उछल पड़ा हो ॥१-१४॥

[१२] इस प्रकार लङ्कानगरी क्षुब्ध सागरकी तरह व्याकुल हो उठी। रथवर गजवरसमूह अश्व विमान और योद्धाओं से वह व्याप्त हो रही थी। निकलती हुई सेना कहीं भी नहीं समा पा रही थी। वह गलियोंको रौंदती हुई जा रही थी, ध्वज और चपल महाध्वज फहरा रहे थे। पटु पटह, शङ्ख और मरदल बज रहे थे। उत्तम शस्त्र अपने हाथोंमें लिये हुए, रावणके अनुचरोंने तुरन्त उस उपवनको ऐसे घेर लिया मानो नव मेघोंने नागमण्डलको घेर लिया हो या मानो तीन प्रकारके पवनोंने त्रिभुवनको घेर लिया हो। इस प्रकार रथवरों और गजवरोंसे उसे घेरकर अनुचरोंने हनुमान को ललकारा— "जैसे तुमने विशाल पराक्रम प्रकट किया, अक्षकुमार वज्रायुधको युद्धमें आहत किया वनपालोंकी हत्या की और उद्यान उजाड़ा है उसी तरह विद्युत् की तरह अब मर मार प्रहार झेल।" यह सुनकर हनुमान विशाल कपित्थ वृक्ष लेकर दौड़ा। पलभरमें ही निकटमें उसने शत्रुसेनाको अनेक भागोंमें विभक्त कर दिया। मानो सिंह होकर सिंहने हाथीके झुण्डको कई दिशाओंमें तितर-बितर कर दिया हो ॥१-९॥

[१३] जहाँ-जहाँ पवनसुत घूमता, वहाँ-वहाँ सेना ठहर नहीं पाती। अपने कालके कुद्ध होनेपर मुक्लत्रकी तरह (वह सेना) न नष्ट ही होती और न पास ही पहुँच पाती। मुक्लत्र की तरह वह सामने-सामने आती थी। मुक्लत्रकी तरह मुकुटि के सम्मुख नहीं ठहरती थी। मुक्लत्रकी तरह विपरीत नहीं देखती थी। मुक्लत्रकी तरह वह मनमें पीड़ित थी। मुक्लत्र की तरह वह क्षणभर में पहुँच आती थी। मुक्लत्रकी तरह, रुक आती थी। मुक्लत्रकी तरह हाथ धुनती थी मुक्लत्रकी तरह छिपती हुई जाता थी। मुक्लत्रकी तरह पसीना-पसीना हो जाती। मुक्लत्रकी तरह, रोपसे मुड़ पड़ती थी। मुक्लत्रकी तरह निकल जाते ही स्खलित हो जाती थी। मुक्लत्रकी तरह वह अत्यन्त सङ्कुचित हो रही थी। मुक्लत्रकी भाँति उसके नेत्र मुकुलित थे। मुक्लत्रकी तरह उसकी भृकुटी टेढ़ी-मेढ़ी हो रही थी। मुक्लत्रकी भाँति ही वह सेना सामने-सामने ही दौड़ रही थी। हनुमान उसे रोकता बुलाता और पास पहुँच जाता। कभी उसे पर छेता मुड़ता दौड़ता और उसे पीड़ित करता। किंतु वह सेना चोटें खाकर भी मुक्लत्रकी भाँति अपना रास्ता नहीं छोड़ रही थी ॥ १-१० ॥

[१४] हुलि, हल मूसल शूल सर सब्बल, पट्टिश फलिह, भाला गदा, मुद्गर, मुसुंढि मस, काल शूली और परशु आयुध सनाने जब युद्धमें उठाये हुए हनुमानको आहत कर दिया तब दसभुज उसने भी रावणकी सेनाको चपट डाला। चमरसे चमर दण्डसे छत्र, कौंतसे कौंत लक्कसे लक्क, ध्वजसे ध्वज

सिंहसे सिंह और सरसे सर विद्ध हो उठे। रथसे रथ, गजसे गज अश्वसे अश्व और नरसे नर, टकरा गये। कोई हाथ, कोई पैरसे, कोई पिंडरी ? से, कोई आननसे, कोई दृष्टिसे कोई मुट्ठीसे, कोई स्तनसे, कोई सिरसे, कोई ताड़से, कोई तरुसे कोई चम्पसे, कोई चन्दनसे, कोई बन्धनसे कोई नागसे, कोई चम्पकसे, कोई नीबसे कोई सरलसे, कोई सर्जसे, कोई अर्जुनसे, कोई पाटलीसे कोई पुस्फलीसे, कोई केतकीसे, कोई माधवीसे, हनुमान द्वारा आहत हो उठा। इस प्रकार उसने समस्त सेनाको ध्वस्त कर दिया। प्रहार करते हुए हनुमानने उच्छ्वास रहित रिपुसेना और नन्दनवनको समान रूपसे नष्ट कर दिया ॥१–२३॥

[१५] उत्तम अश्व गिर पड़े। रथ मुड़ गये। मत्त कुंजर चूर-चूर हो उठे। केवल उपेक्षित वृक्षोंकी धरती, मरुस्थली वेश्याके समान बाकी बची थी। देवताओंको भी आनन्द प्रदान करनेवाला रावणका उद्यान और सैन्य दोनों ही धरतीपर पड़े हुए ऐसे प्रतीत हो रहे थे मानो वे जिनप्रतिमाको प्रणाम कर रहे हों। धराशायी नन्दनवन और सैन्य ऐसे लगते थे मानो समुद्रका जल सूख जानेपर जलचर ही निकल आये हों। उद्यान और सैन्य उसी तरह खस्त थे जैसे कुपुत्रके कारण अन्य कुल दुःखी होते हैं। उद्यान और सैन्य आपसमें मिले हुए ऐसे जान पड़ते थे मानो उत्तम मिथुन ही दिखाई पड़ रहे हों। सामोरणी (हनुमान और

समान्य माना उसपर छाया हुआ था। इसलिए उन सैकड़ों भय शत्रुओंकी उपेक्षाकर वह हनुमानके सम्मुख इस तरह दौड़ा मानो दीप पूँछवाले सिंहके पीछे सिंह दौड़ा हो ॥१-१०॥

[२] इसी बीचमें उसके प्रवर सारथीने पूछा कि युद्धके प्रांगणमें आप किससे लड़ेंगे। मैं तो अश्व, गज और ध्वज-चिह्न कुछ भी नहीं देख रहा हूँ फिर रथ किसके सम्मुख हाँकूँ। यह सुनकर, समस्त प्रतिपक्षका संहार करनेवाले अक्षयकुमारने उत्तरमें सारथीसे कहा कि सैकड़ों युद्धोंमें यशस्वी हनुमानके सम्मुख मेरा रथ हाँक ले चलो। तुम रथ वहाँ हाँककर ले चलो जहाँ चूर-चूर हुए अश्वों और नरवरोंके साथ रथवर हैं। रथवरको हाँककर रथ तुम वहाँ ले चलो जहाँ फूटे सिर और भग्न शरीरवाले गज हैं। तुम रथ वहाँ हाँक ले चलो जहाँ छत्र कमलकी तरह धरती पर बिखरे हैं तुम रथवरको वहाँ पर हाँक ले चलो जहाँ पर ध्वज छिन्न-भिन्न पड़े हैं। तुम रथको वहाँ हाँक ले चलो जहाँ मज्जा और माँसके कामी गीध मँडरा रहे हों। तुम रथवर वहाँ हाँक ले चलो जहाँ नन्दनवन इस प्रकार ध्वस्त कर दिया गया है मानो विरहिजन (विरहीजन) यौवन हो मसल दिया हो। सारथिपुत्र यह है हनुमान और यह है रावणपुत्र अक्षय कुमार। युद्धरत दोनोंकी यह सेना है। जिस प्रकार हनुमानकी माँ उसी प्रकार मन्दोदरी (अक्षयकी माँ) दुःखके आँसू गिरायगी ॥२-१०॥

[३] जब सारथीने यह देखा कि कुमार अक्षय रणरस (वीरता) से भरा हुआ है तो उसने हनुमानके सम्मुख रथ बढ़ा दिया। रणस्थलमें पहुँचते ही हनुमानने उसे इस प्रकार देखा मानो समुद्रने गंगाके प्रवाहको देखा हो। रथ देखकर हनुमान

मन ही मन उमड़ पड़ा। सूर्यमण्डलपर राहुकी तरह या कामदेव पर शिवकी तरह, उसकी ओर मुड़ा। रणमुखमें पवनपुत्र कुमार अक्षयपर उसी प्रकार झपटा जिस प्रकार, अश्वग्रीवपर त्रिविष्ट, मानो सुग्रीवपर राम या सहस्राक्षपर रावण झपटा था। तब रावण-पुत्र कुमार अक्षयने निष्ठुर और कठोर शब्दोंमें पवनपुत्रको ललकारकर उसे क्षुब्ध कर दिया। उसने कहा, "अरे हनुमान! तुमने भला युद्ध किया। जिनवरके वचनको तुमने कुछ भी नहीं समझा। अणुव्रत, गुणव्रत और परधन व्रतोंसे तुम्हारे पास कुछ भी नहीं है, जिससे कि श्रावकका सुनाम होता है। जिसने इतने इतने जीवोंका संहार किया है कि पता नहीं वह कहाँ जाकर विश्राम पायेगा। मैंने इस समय सभी छोटे-छोटे जीव-जन्तुओंको मारनेसे निवृत्ति ग्रहण कर ली है, केवल एक बातको अभी तक ग्रहण नहीं किया और वह यह कि तुम्हारे जैसे लोगोंके साथ युद्ध करना नहीं छोड़ा'॥१-९॥

[८] कुमार अक्षयके वचन सुनकर हनुमानके दर्पपूर्ण मुखकमलपर हँसी आ गई। वह बोला "जैसे इतने जीवोंका, वैसे ही लड़ते-भालते हुए तुम्हारा भी जीवनहरण कर लूँगा।" यह कहनेपर सुभटश्रेष्ठ कुमार अक्षय और हनुमान दोनों आपस में एक टकरा गये मानो दोनों ही आशीविष सपराज हों। मानो दोनों ही अंकुशविहीन गज हों मानो दोनों ही वेगशील सिंह हों मानो दोनों ही गरजते हुए महामेघ हों, मानो दोनों ही उछलते हुए समुद्र हों। दोनों राम और रावणके अनुचर थे। विशाल वक्षःस्थलवाले वे दोनों ही अपने हाथ धुन रहे थे। क्रोधोंके नेत्र आरक्त थे और वे अपने ओठ चबा रहे थे। दोनों ही, बढ़ते हुए युद्धभारसे दब थे। दोनों ही अमरोंका नाम

विण्णि वि जासु किण्णि भरहन्तहों । तव णिक्खिवणें सुणु दसुवन्तहों ॥८॥
तेण वि तिण्ण-भुवणें हिँ वण्णिउ । अक्कि जिह दिसिहिँ विहर्जे वि वण्णिउ ॥

घत्ता

पुणु सुणहु महीहरु स-तरु स-कन्दरु सो वि पईविउ जिणु जिह ।
कम-कमलाणन्दें परम-जिणेन्दें भीसणु भव-संसारु जिह ॥४॥

[५]

अण्णेक्कु जिण गिरिवरु सुणहु जामहिँ ।
आरूढऍण पवण सुपण तामहिँ ॥
जिण-सुय-वलेंण मारेंवि अइयकन्तरे ।
सहु रहवरेंण वलिउ पुव्व-सायरे ॥१॥

सत्तरि सहिउ तुरङ्गम आइय । आसाकिण्णहें महापहें आइय ॥२॥
अग्गउ गयण-मग्गें उप्पारें वि । आउ कमहें सिरु संचारें वि ॥३॥
किर परिभिवइ विपउ-वलक्क-ब्भाऍ । दपुवें अवर समारोंवि अहवऍं ॥४॥
वलिउ दाहिण-कमल-महण्णवें । आउ पईविउ सिहिउ महण्णवें ॥५॥
पुणरवि वलिउ पच्छिम-सायरें । तहि सि पराइउ णिविसमन्तरें ॥६॥
पुणु आसाविउ उत्तर-वासें । पत्तु पईविउ सहुँ वीसासें ॥७॥
पुणु णवयहों विणु मासेण्पिणु । मेरुहें पासें हिँ भामरि देप्पिणु ॥८॥
पत्तु अणन्तरें अद्धें पमाणउ । 'भाइय पवर पवर पमाणउ' ॥९॥

घत्ता

(ये) तिहुअणेणि पचाहिय सुर मणें खोहिय 'कुणहहों कवण कुणहहों तणिय ॥
दुक्कर वीहेसइ रामहों भैसइ कुसल-मय सीयहें तणिय' ॥१॥

[६]

जोवण-सऍण जो वक्खिज्ज आसइ (?) ।
अइ-चञ्चलउ मणु कामिणिहें भासइ ॥

ले रहे थे। कुमार अक्षयने हनुमानके ऊपर एक वृक्ष फेंका। हनुमानने उसे अपने तीखे खुरपेसे वैसे ही खण्ड-खण्ड कर दिया जैसे पक्षिका विभक्तकर दिशाओंमें छिटक देते हैं। तब कुमार अक्षयने गुफाओंसे सहित पहाड़ फेंका, वह भी छिन्न-भिन्न होकर उसी प्रकार गिर पड़ा जिस प्रकार जननेत्रोंको आनन्द देनेवाले जिनसे छिन्न-भिन्न होकर भीषण भव-संसार गिर पड़ता है ॥१-१०॥

[५] इतनेमें कुमार अक्षय एक और पहाड़ उठाकर फेंकने लगा। परन्तु पवनपुत्र हनुमानने अपने भुजबलसे उसे आकाशमें उछालकर रथसहित पूर्व समुद्रमें फेंक दिया। सारथी मारा गया। और दोनों अश्वोंने आशाली विद्याका अनुसरण किया। किन्तु कुमार अक्षय आधे ही क्षणमें शिला उठाकर मारने आया। तब विशाल वक्षस्थलवाले हनुमानने उसे घुमाकर लवण समुद्रमें फेंक दिया। फिर भी वह लौटकर लड़ने लगा। तब हनुमानने उसे पश्चिम समुद्रमें फेंक दिया। वह वहाँसे भी पलभरमें लौट आया। तब हनुमानने उसे उत्तर दिशामें फेंका वहाँसे भी एक निमिषमें लौटकर आ गया। हनुमानने उसे आकाशमें फेंक दिया वह भी मेरुपर्वतकी प्रदक्षिणा देकर आधे ही पलमें आकाशमें गर्जन करता हुआ आ गया। उसने कहा "प्रहार करो प्रहार करो।" यह सुनकर देवता मन ही मन डर कर बोले, अरे अब तो हनुमानके पौरुषकी गाथा ही समाप्त हुई अब इसका जीवित रहना और रामके पास सीतादेवीका कुशल-सन्देश ले जाना दुष्कर ही है।" ॥१-१०॥

[६] सौ सौ योजन दूर फेंके जानेपर भी वह वापस आ जाता था, इस प्रकार वह कामिनीके मनकी तरह चंचल हो रहा

ण आढवें तिमेवि ण सक्किउ भरो ।
विम्भाविओ भमें हणुवन्त-केसरी ॥१॥

रावण-तणयहों फुरिउ पससिउ । 'बहु बहुरूवेण महु पाविउ ॥२॥
जसु संगाउ सुरेहिँ ण बुज्झिउ । तेण समाणु केम हउँ जुज्झिउ ॥३॥
जिह बहु अप्पु थिउ मइँ आहवेँ । कुसुम-यत्त जिह पाविय राहवेँ ॥४॥
आवइ मयँम विवण्णइ चारहि । मन्दोयरि सुपुत्त तउ वारहि ॥५॥
जम्बवुत्तें मइ बोल्लाविउ । 'किं सो पवण-पुत्त विन्धाविउ ॥६॥
जासु जासु वरु पावइँ भीयउ । हणुवइ णाम ण आवइ बीयउ' ॥ ॥
ण विसुणेवि पइज्ज-वाए । रिउ बज्झवणें विहु धाराए ॥८॥
तेण पहारें णिसियरु मुच्छिउ । पडियउ मुच्छ मुच्छ आमुच्छिउ ॥९॥

घत्ता

तहिँ अवसरें आइय पासु पराइय आयहो अन्तरु जिय जिह ।
एक्कहेँ अग्गएँ केवलि-सिहरएँ परम-जिणिन्दहो दिट्ठि जिह ॥१ ॥

[७]

पणमिय मउँम 'विन्तिउ जिणवर तुम्हहिँ ।
पत्तउ कोँ पुण समासु सुगम्महिँ' ॥
पइसिय मुरएँ णर सुर-पुज्जणिज्जए ।
संबोहियउ अम्हउ भवयण-विजए (?) ॥१॥

'अहो मन्दोयरि-पवणाणन्दण । कहइ णवरि बराहिव-णन्दण ॥२॥
जं पणवमि तं काइँ ण इच्छमि । सिरसा पणासमि वि पडिच्छमि ॥३॥
जइ इउ अण्णण विरुअ कसमि । तो विसिमरुँ सावउ सासमि ॥४॥
इन्दहोँ इन्दत्तणु उद्दालमि । मरु वि णाम-कम्मों टालमि ॥५॥
णवरि एक्कु गुरु सम्बइँ पासिउ । जाइ ण-पमाणु होइ मुणि-भासिउ ॥६॥

कभी अपमानित नहीं जाता। तुम और मैं दोनों हनुमानके हाथसे यमसुभटके पथपर जायेंगे इतनेपर भी यदि तुम अपना हित नहीं समझते तो युद्ध करो, मैं भी वाहनसहित मायावी सेना उत्पन्न कर एक पलके लिए तुम्हारी सहायता करूँगी।" ॥१-८॥

[८] यह कहकर विद्याने अनन्त सेना उत्पन्न कर दी जो मेघकुलकी तरह दसों दिशाओंमें फैल गई। जल, थल, आकाश और भुवनांतरमें भी वह नहीं समा पा रही थी। वह हाथमें अस्त्र लेकर हनुमान पर दौड़ी। किसीने महा-ज्वल अग्नि ले ली, किसीने जनसंतापकारी, हुतवह ले लिया। किसीने वटका पेड़ उखाड़ लिया किसीने अंधकार, तो किसीने पवन। किसीने जलधारापर वारुण तो किसीने अत्यंत भयङ्कर दिनकर-अस्त्र ले लिया। किसीने नाग-पाश और किसीने मेघ ही ले लिया। इस प्रकार योधागण दौड़ पड़े। तब अभिनव सेनाका विचार करते हुए हनुमानने भी अपनी 'पण्णत्ति' प्रज्ञप्ति विद्याका चिंतन किया। वह "आज्ञा दो" यह कहती हुई आ पहुँची। वह भी विद्यामयी सेना रचकर दौड़ी। दोनों सेनाएँ आपसमें टकरा गईं। जल-थल दोनों मिलकर एक हो गये। दोनोंकी ध्वजाएँ चढ़ रही थीं और तूर्य बज रहे थे मानो अति क्रूर कलिकालके मुख ही हों। त्रिभुवनके सारभूत हनुमान और अक्षयकुमारमें राक्षस सघन युद्ध हुआ। इन्द्रने भी उसे गण-समूहके साथ ऐसे देखा मानो इन्द्रजाल हो ॥१-१०॥

[९] दोनों ही सेनाओंको जयश्रीके विस्तारकी चाह हो रही थी, वे युद्धमें प्राणोंके लिए भयङ्कर धीरोंसे प्रहार कर रही थीं। उनके अधर काँप रहे थे और योधाओंकी भौंहें भयङ्कर हो रही थीं। एक दूसरेपर बाणोंका जाल छोड़ रहे थे। कहीं

कप्पइ घोडाघोडि धराधरि । कप्पइ कुडाकुडि धराधरि ॥२॥
कप्पइ हुडाहुडि सरासरि । कप्पइ कण्डाकण्डि सरासरि ॥३॥
कप्पइ दण्डादण्डि धणाधणि । कप्पइ केसाकेसि हणाहणि ॥४॥
कप्पइ छिन्दाछिन्दि कुणाकुणि । कप्पइ कड्ढाकड्ढि गुणागुणि ॥५॥
कप्पइ भिन्दाभिन्दि हणाहणि । कप्पइ मुसलामुसलि हलाहलि ॥६॥
कप्पइ सेल्लासेल्लि परिग्गहुँ । कप्पइ पट्टापट्टि पइग्गहुँ ॥७॥
कप्पइ पाडापाडि तुरङ्गहुँ । कप्पइ मोडामोडि रहङ्गहुँ ॥८॥
कप्पइ कोडाकोडि विमाणहुँ । आहर णाहर णरवर-पाणहुँ ॥९॥

घत्ता

भिण्ण वि अ-भिण्णियइँ माणा सेण्णइँ ताव परोप्परु जुज्झियइँ ।
जहिँ गम्पि पइट्ठइँ कहि मि ण दिट्ठइँ जाव ण कन्ध वि बुज्झियइँ ॥१ ॥

[१]

उच्चरिय पर जुज्झ-रस-विसट्टा ।
संगर-सय-लद्ध रावण-पवण-णन्दणा ॥
ण मत्त गय घाइय एक्कमेक्कहो ।
पइसोच्चरिय रण-भर वेग्ग सहारी ॥१॥
तो धाइउ समीरण-णन्दणु । पुरिउ रणेँ रयणीयर-सन्दणु ॥२॥
धारिउ मिहर दुद्दम धाइय । वइवस-पुरवर-पन्थेँ लाइय ॥३॥
धणकुमार-रसुल पिय वेयड । वाहा-जुअलेँ भिडिय महा भड ॥४॥
तो मारुय-सुएण आयामिउ । चलणेँहिँ लेवि सिलायले भामिउ ॥५॥
ताम धाम धम्मेहिय पासेँहि । कह वि कह वि जिय-जिय समासेँहि ॥६॥
कोमलइ मि उच्चासियइँ मुएवि । विभिण्णु बाहु-वग्ग मय लुएवि ॥ ॥

योद्धाओंमें बराबरीकी कहासुनी हो रही थी। धक्का-मुक्की हो रही थी। कहीं हुलमूलि हो रही थी और कहीं मारामारी हो रही थी। कहीं, तीरन्दाजी, कहीं खड्गबाजी, कहीं घनबाजी, कहीं केशा-केशी और कहीं मारकाट हो रही थी। कहीं भेदन-भेदन कहीं खींचा खींची कहीं खींचतान, और कहीं मारधपेट हो रही थी। कहीं मर्दामर्दन कहीं दलना-पाटना कहीं मूसलबाजी कहीं हलबाजी कहीं राजाओंमें सेलबाजी और कहीं हाथियोंमें रेलपेल मचा हुई थी। कहीं विमान गिर-पड़ रहे थे, कहीं सांगोंमें मारा-मारी मची। कहीं घावोंमें पड़ापड़ी हो रही थी। कहीं विमान काट-पीट हो रहे थे कहीं नरवरोंके प्राण भी जा रहे थे? इस तरह लगकर दोनों मायावी सेनाएँ लड़ते-लड़ते कहीं भी जाकर नष्ट हो गईं। न तो कोई उन्हें देख सका और न समझ ही सका॥१-१०॥

[१०] तब युद्धमें दानवोंका मर्दन करनेवाले हनुमान और अक्षयकुमार युद्धमें समान रूपसे लड़ने लगे। पवनपुत्रने रुष्ट होकर रजनीचरके रथको चूर-चूर कर दिया सारथीको मार डाला, और अश्वको आहत कर दिया। उसे वैश्रवणके पथपर भेज दिया। अब अकेले हनुमान और अक्षयकुमार बचे। दोनों महा पक्षियोंका बाहुयुद्ध होने लगा। तदनन्तर हनुमानने झुककर अक्षयकुमारको पैरोंसे पकड़कर तब तक घुमाया जब तक कि अपने अनुचरोंके तुल्य प्राणोंने उसे मुक्त नहीं कर दिया। उसके अंग फूटकर लथपथ पड़े दोनों हाथ टूटकर गिर गये, नीलकमलकी

बहुत लक्षणोंसे युक्त लक्ष्मण भागकर नहीं लड़ता। इसलिए, हे रावण, मेघनायक और विशालबाहु, तुम जन-अभिराम रामको जनकसुता सीता सौंप दो। परस्त्रीका रमण करते हुए तुम्हें जीते जी कहीं भी सुख नहीं मिल सकता। उससे मुक्त होओ। अपने मनमें मूर्ख क्या बनते हो।' इस तरह विभीषण रावणके हृदयको भर कर ही रहा था कि इतनेमें धरतीपर चमकता हुआ सुभट इन्द्रजीत उठा ॥१-९॥

[२] वह बोला, "दानव और इन्द्रका दलन करनेवाले विभीषण, तुमने यह क्या कहा। अक्षयकुमारके मारे जाने और हनुमानके आनेपर अब पलायन करना ठीक नहीं। अब मन्त्रणा करनेसे क्या होगा पानी निकल जाने पर अब बाँध बाँधना क्या शोभा देगा। पितृव्य! यदि विनाशसे आप भयभीत हैं तो मुझे युद्धमें दूसरा उत्तर साक्षी समझना! एक मेघवाहन (मघवाहन) ही पर्याप्त है। भानुकर्ण और पंचानन यहीं रहें। मय, मारीच और सहोदर भी रहें और भी जो जो कायर हैं, वह भी रहें। यह मेरे लिए तो बहुत ही अच्छा अवसर है। मैं आज-कल ही में युद्ध करूँगा। जिसने आसाली विद्याका पतन किया जिसने उद्यान उजाड़कर वनपालोंको भी मार डाला अनुचरोंको भी आहत कर दिया और जिसने अक्षयकुमारको भी समाप्त कर दिया उस आज सिंहके पैरोंमें पड़े मृगकी तरह मैं किसी न किसी तरह नष्ट कर दूँगा। दूत समझकर युद्धस्थलमें यदि मैंने उसे न मारा तो कमसे कम पकड़कर तुम्हारे सामने लाकर रख दूँगा" ॥१-१०॥

[३] "और भी शत्रुनाशक, अभिमानस्तम्भ हे तात! मेरे वचन सुनो, यदि मैं रणमें उद्धत हुए शत्रुको न पकड़ूँ तो

थी। कोई भारसे मस्तक झुकाये हुए थे, कोई हींसते हुए घोड़ोंपर और कोई मद झरते हुए उन्मत्त हाथियोंपर, कोई रथ और शिबिका यानपर, और कोई प्रवर विमानोंपर आरूढ़ हुए। कोई अपनी पत्नियोंसे मिल रहे थे, कोई रणमें आनेसे रोक लिया गया। किसीने अपनी पत्नीको यह कहकर डाँट दिया, "केवल एक स्वामी की आपकी इच्छा करो।" आगे इन्द्रजीत था और पीछे निशाचर का सेना। मानो शशिके पन्द्रहके पीछे तारागण लग रहे हों ॥१-९ ॥

[४] उसने सारथीसे कहा, "अरे महारथी रह हो गये? कहो कितने अस्त्र हैं, रणके सब हथियार रथपर चढ़ा लिये हैं न? इसपर सारथीने उत्तर दिया "देव! शीघ्र प्रहार करनेवाले पाँच चक्र और सात उत्तम धनुष हैं। अनिर्दिष्ट गर्भवाली दस सुन्दर तलवारें हैं। बारह मूसल और पन्द्रह मुद्गर हैं। रथमें दुधर सोलह गदा हैं। बीस गदा और चौबीस त्रिशूल हैं, शत्रु-विरोधी तीस भाले हैं। पैंतीस घन फरसा बावन तीर अर्धेन्दु, साठ सब्बल, सत्तर मुग्दर और चौदह कणय चढ़ हुए हैं। अस्सी त्रिशक्ति, नब्बे भुसुंडि सौ-सौ बाणोंके परिमाणको जानता हूँ। और किसीका परिमाण मैं नहीं जानता। बारह निगड और सोलह पिचारें भी रथमें हैं, ये वे ही पिचारें थी जो युद्धमें इन्द्रसे जा भिड़ी थी ॥१-१०॥

[६] यह सुनकर इन्द्रजीतने उस ओर रथ बढ़ाया जहाँ हनुमान था। (वह रथ ऐसा लग रहा था) मानो धरतीका

ठहरता हुआ मर्यादासे हीन समुद्र हो। दुर्जेय उनसे हनुमान उसी प्रकार घिर गया जिस प्रकार केवली अवधि और मनःपर्यय ज्ञानसे, जम्बूद्वीप समुद्रोंसे, सिंह गजोंसे, आकांत तीन प्रकारके पवनोंसे तिनकर नये जलधरोंसे घिरे रहते हैं। यद्यपि वह सुभट अकेला था, और शत्रुसेना अनंत थी फिर भी उसका मुखकमल खिला हुआ था। वह कभी चलता, ठहरता छलांग मारता हुँकार-रता प्रहार करता कुचलता, अम्हाई लेता, खड़ा होता, फेंकता, दिखाई दे रहा था। प्रहारोंसे वह वैसे ही छिन्न-भिन्न नहीं हो रहा था जैसे सांसारिक कारणोंसे जिन छिन्न-भिन्न नहीं होते। हनुमानके चारों ओर सेना ऐसी घूम रही थी मानो मंदराचलके आस-पास समुद्रका जल हो। शस्त्र उठाए हुए भी वह सैन्यसमूह हनुमानको पकड़नेमें असमर्थ था। मानो मेरुके चारों ओर तारा गण घूम रहे हों॥१-१०॥

[७] तब राक्षससंहारक पवनपुत्र पुलकित होकर, सेना-पर झपटा। रथवरसे रथको उसने आहत कर दिया गजवरसे गजको अश्वसे अश्वको सुभटसे सुभटको कबंधसे कबंधको, छत्रसे छत्रको चिह्नसे चिह्नको बाणसे बाणको, वरचापसे वर चापको अनिर्दिष्ट गदाको ? तलवारसे तलवारको, चक्रसे चक्र को त्रिशूलसे त्रिशूलको मुद्गरसे मुद्गरको, हुलिसे हुलिको कनकसे कनकको, मुसलसे मुसलको रणके आँगनमें कुदाल कोंच से कोंचको सेलसे सेलको सुरुपासे सुरुपाको फलिहसे फलिहको और गदासे गदाको और यंत्रसे आते हुए यंत्रको स्खलित कर दिया। सेनाको उसने व्याधकी तरह ध्वस्त कर दिया। रथ और अश्वोंसे हीन वे माथा झुकाये हुए थे। उनका मुख

पीला, और नेत्र मलिन थे। समूची सेना नष्ट हो रही थी। अपनी सेनाको इस प्रकार प्रहारोंसे क्षत्रित होते देखकर, मेघवाहन सबसे आगे बढ़ा। वह बढ़िया रथपर आरूढ़ था ॥१-१०॥

[८] सब युद्धमें भीषण चमचमाते हुए, राम और रावणके वे दोनों अनुचर भिड़ गये। मानो विजयके लिए शीघ्रता करने वाले मायासुग्रीव और राम ही 'मारो-मारो' कह रहे हों। दोनों ही प्रचण्ड थे, दोनों ही विद्याधर थे, दोनों ही अक्षय तूणीर और धनुष धारण किये हुए थे। दोनोंके वक्षस्थल विशाल थे और भुजायें पुलकित थीं। दोनों ही अंजना और मन्दोदरीके पुत्र थे। दोनों ही पवनंजय और रावणके लड़के थे। दोनों ही दुर्दम दानवों के मर्दन करनेवाले थे। दोनों ही शत्रुसेनापर विजयलक्ष्मी रूपी वधूको बलात् लानेवाले थे। दोनों ही क्रमशः राम और रावणके पक्षके थे। दोनोंकी ही सुर-बालायें देख रही थीं। दोनों ही सैकड़ों युद्धोंमें यशस्वी थे। दोनों ही प्रभुके सम्मानका निर्वाहनवाले थे। दोनों ही परम जिनेन्द्रके भक्त थे। दोनों ही धीर-वीर और भयसे रहित थे। दोनों ही अतुल मल्ल, रणमें दुर्धर थे। दोनों ही आरक्त नेत्र और स्फुरिताधर थे। देव और असुरोंमें जो महायुद्ध देखा जाता है राम और रावणमें वह वैसा ही दुष्कर युद्ध होगा ॥१-९॥

[९] भयसे क्रुद्ध यशके स्वामी जयश्रीका प्रसाधन करने वाले मेघवाहनने हनुमानके ऊपर मेघवाहिनी विद्या छोड़ी और कहा—"जाकर अपना पराक्रम बताओ। जैसे संभव हो वैसे उसके ऊपर बरसो।" यह सुनकर विद्या चल पड़ी और मायावी मेघों की छाया रचना प्रारंभ कर दी। कहीं मेघोंसे दुर्गमता थी कहीं इन्द्रधनुष निकल आया कहीं बिजली चमक रही थी कहीं मेघ

से पानी गिर रहा था। कहीं पानीसे धूलरहित मूसल बहा जा रहा था। कहींपर मोर शब्द कर रहे थे और कहीं पर बगुलोंका दल दिखाई दे रहा था। इस तरह उसने नई पावस लीलाका प्रदान किया स्थिर और स्थूल जलधाराएँ बरसीं। तब पवन-सुतने भी, वायव्य तीर भेजा। उससे समस्त घनागम नष्ट हो गया। ध्वज सारथी और तुरगसहित रथ मुड़ गया, परन्तु एक अकेला रावणपुत्र ही मारा गया ॥१–१॥

[१०] मेघवाहन और अपनी सेनाके इस प्रकार नष्ट होने पर इन्द्रजीत एकदम विरुद्ध हो उठा मानो मत्त गजराजकी मद भरी गंधसे सिंह ही क्रुद्ध हो उठा हो। उसने कहा, "हनुमान, ठहरो-ठहरो, कहाँ जाते हो। अपना सिर सजाकर रथपट सजाओ। बड़े-बड़े रथ और घोड़े ही उसमें पासे होंगे। महागजोंका चलना ही पासोंका चलना होगा। हाथ और सिरका छेदन, प्रहार मरण गमन और पुनि सभाव ही उसमें कूटपूर्व होंगे। यह युद्धपट इस प्रकार मंडित है। आओ इसमें जीत सीता और भूमि उसके लिए ही प्रदान की जाय। जिस तरह तुमने उद्यान उजाड़ा कुमार अक्षयको मारा, वैसे ही मुझपर प्रहार करो प्रहार करो मैं तुम्हारा दुश्मन आ गया हूँ"। यह कहकर इन्द्रजीत युद्धमें हनुमानसे भिड़ गया। पवनपुत्र और रावणपुत्र इस तरह आपसमें भिड़ गये मानो ससुर और दामाद दिग्गज ही लड़ पड़े हों ॥१–१॥

[११] अक्षहननशील रावणपुत्रने पहले ही भिड़न्तमें चार बाण छोड़े परन्तु उद्यानको उजाड़नेवाले हनुमानने आठ बाणोंसे उन्हें छिन्न कर दिया। जब बाणोंसे बाण विध्वस्त हो गये तो उसने भीषण गदा घुमाकर फेंकी। चूर-चूर करती वह दौड़कर हनुमानके

अवसरमें ऐसे लगी मानो युद्धरूपी अपने अवसरसे ही आ लगी हो। तब उसने मुद्गर मारा, हनुमानने उसके भी सौ टुकड़े कर दिये। तब निशाचरने वह चक्र छोड़ा, जो सैकड़ों युद्धोंमें अजेय था। अत्यन्त हर्षित हनुमानको वह कहीं भी नहीं लगा वैसे ही जैसे दुर्जनके वचन सज्जनको नहीं लगते। इन्द्रजीत जो-जो अस्त्र छोड़ता, वह सौ-सौ टुकड़ोंमें हो जाता। रावणपुत्रके भयमें निरस्त्र होनेपर रामके दूत हनुमानने विलासपूर्वक हँसते हुए कहा—"अच्छा हुआ जो तुम मुझसे कोई प्रहार करो मानो उप बासोंसे भग्न हो गये हो?" उसके वचनोंसे इन्द्रजीत रागसे भड़क उठा मानो आगमें घी पड़ गया हो॥१–१०॥

[१२] उसने कहा "अरे-अरे युद्धमें इस तरह व्यर्थ बार बार गरजनेसे क्या ? मत्सररहित, लम्बी पूँछके प्रवर सिंहसे क्या। बिना विषके विशाल साँपसे क्या, बिना दाँतके हाथीसे क्या बिना सहायकके साहससे क्या, आकाशमें निर्जल मेघसे क्या, धूल कणोंके ढेर दुर्भिक्षसे क्या कुसुमसमूहके द्वारा किसी पापके मदसे क्या यदि प्रहार करूँ तो एक ही आघातमें मार डालूँ, परन्तु तुम दूत हो इसलिए विघात नहीं करता।" यह कहकर उसने भुवनमें यशस्वी हनुमानके ऊपर नागपाश फेंका। इस अवसरपर हनुमानने अपने मनमें सोचा कि मैं कितना और शत्रुसंहार करूँ। तो उचित यही है कि मैं अपने आपको बँधवा दूँ। जिससे रावणके साथ बातचीत कर सकूँ।" यह विचारकर उसने आते हुए उस नागपाशको सगे भाईकी तरह आलिंगन कर लिया। रणरससे भरपूर कुशल हनुमानने कौशलपूर्वक अपने आपको पकड़वा लिया॥१–१०॥

•

पुणु वि पवियउ मेल्लिउ मोग्गरु । छिन्नु हणुवेण सो वि सय-सक्करु ॥४॥
पुणु वि विसल्लें चक्कु विसज्जिउ । तं पवणसुय-सरेँहिँ जज्जरियउ ॥५॥
एम वि ण कम्पु पवरिउ-हरिसाहोँ । दुक्कय-वयणु जेम सप्पुरिसहोँ ॥६॥
जं जं मुक्कइ पहरणु अण्णइ । तं तं णं सयवत्तु पवण्णइ ॥७॥
रयणुप्पर सुरवेँण णिरत्थीहूए । हसिउ स-विम्हउ रामहोँ दूए ॥८॥
'चउ मइँ समाणु जोब्बण्णउ । पहरहि णं रणवासोँहिँ मण्णइ' ॥९॥

घत्ता

हणुवहोँ वयणेँहिँ सो कुम्भइ अत्ति पलित्तउ ।
मय-णीसासणु छिंदि णाइँ सित्तिएँ सित्तउ ॥१०॥

[१२]

मउ मउ काइँ पुण एँवँ विण्णवेण समवार-मज्झिएणं ।
किं कप्पूर-वीढेण पवर-वीढेण व्व विवज्जिएणं ॥१॥
णिव्विसेण किं पवर-भुअङ्गेँ । णिम्मएण मय मायङ्गेँ ॥२॥
किं जल-विरहिएण घणेँ मेहेँ । किं णीसत्तमाणेण सणेहेँ ॥३॥
किं गुण-वयण सरवेँ दुव्विणयेँ । मणहु महत्तु किंव कु-पुरिस-सम्वेँ ॥४॥
जइ पहरमि ता बाएँ मारमि । किं तईँ दूउ तेण ण वियारमि' ॥५॥
एम भणेवि सुवणेँ जसकन्तहोँ । मेल्लिउ णाय-पासु हणुवन्तहोँ ॥६॥
तेहएँ अवसरेँ तेण वि चिन्तिउ । 'अप्पउँ मि रिउ संचारमि कोँक्किउ ॥७॥
तो वरि अप्पाणमि अप्पाणउ । जें जोवमि रावणेण समाणउ ॥८॥
एम भणेवि पडिच्छिउ णत्तउ । णाइँ सहोयरु साइउ देन्तउ ॥९॥

घत्ता

रण-रसियद्धेँण करसत्तु अप्पिउ मुद्देँ ।
स इँ भु व-पञ्जरु बाराविउ पवणहोँ पुत्तेँ ॥१०॥

क्षणभरमें ऐसे लगी मानो सुमन्ता अपने स्वतसे ही आ लगी हो। तब उसने मुद्गर मारा। हनुमानने उसके भी सौ टुकड़े कर दिये। तब निशाचरने वह चक्र छोड़ा, जो सैकड़ों युद्धोंमें अजेय था। अत्यन्त हर्षित हनुमानको वह कहीं भी नहीं लगा वैसे ही जैसे दुर्जनके वचन सज्जनको नहीं लगते। इन्द्रजीत जो जो अस्त्र छोड़ता वह सौ-सौ टुकड़ोंमें हो जाता। रावणपुत्रके अन्तमें निरस्त्र होनेपर रामके दूत हनुमानने विलासपूर्वक हँसते हुए कहा—"अच्छा हुआ जो तुम मुझसे एक प्रहार करा, मानो तप पाशोंसे भग्न हो गये हो ?' उसके वचनोंसे इन्द्रजीत शीघ्र भड़क उठा मानो आगमें घी पड़ गया हो ॥१-१८॥

[१९] उसने कहा, "अरे-अरे युद्धमें इस तरह व्यर्थ बार बार गरजनेसे क्या। नखरहित लम्बी पूँछके प्रवर सिंहसे क्या। बिना विषके विशाल सर्पसे क्या बिना दाँतके हाथीसे क्या बिना सहायकके स्नेहसे क्या आकाशमें निर्जल मेघसे क्या, पूत कर्मोंके पाप दुर्विदग्धसे क्या कुपुरुषसमूहके द्वारा किसी पावक मरणसे क्या, यदि प्रहार करूँ तो एक ही आघातमें मार डालूँ परन्तु तुम दूत हो इसलिए विराम नहीं करता।" यह कहकर उसने भुवनमें यशस्वी हनुमानके ऊपर नागपाश फेंका। इसी अवसरपर हनुमानने अपने मनमें सोचा कि मैं कितना और शत्रुसंहार करूँ। अब उचित यही है कि मैं अपने आपको बँधवा दूँ। जिससे रावणके साथ बातचीत कर सकूँ।" यह विचारकर उसने आते हुए उस नागपाशको सगे भाईकी तरह आलिङ्गन कर लिया। रणरसमें भरपूर कुशल हनुमानने कौतुकपूर्वक अपने आपको बँधवा लिया ॥१-१ ॥

चौवनवीं संधि

कुमार हनुमान, मलयपर्वतकी तरह प्रबर भुजंगोंसे आच्छादित (नाग-पाशसे बँधा हुआ और नागोंसे लिपटा हुआ) रावणके पास चला।

[१] यह देखकर नवनील कमलकी तरह नेत्रवाली शोकसे संतप्त सीतादेवी अपने मनमें सोचने लगीं, कि "पवनपुत्र तुम्हें छोड़कर अब कौन मेरी कुशलवार्ता ले जा सकता है।" उधर वह ऐरावतकी तरह सूँड़वाला हनुमान लंकाके सम्मुख ऐसे ले जाया गया मानो साँकलोंसे बँधा हुआ मत्तगज ही हो। आधे ही पलमें उसे लंकानगरीमें प्रविष्ट कराया गया। इस तरह मानो उन्होंने अपने विनाशको ही ललकारा हो। इसी बीचमें पीन-पयोधरा सीतादेवी और लंकासुन्दरीने जो दूत और अधिराजा हनुमानकी खबर लेनेके लिए भेजा था, वे दोनों लौटकर आ गये। शीघ्र ही उन दोनोंने आकर झरते हुए आँसुओं और गद्गद स्वरमें चन्द्रमुखी और कमलनयनी उन दोनोंको तुरत कहा "माँ सुनो। उस दूतने क्या-क्या किया। लंकानरेशका जो प्राणप्रिय उद्यान था वह उसने उजाड़ दिया है, और समस्त अनुचरसेनाको नष्ट किया है। कुमार अक्षयके प्राण हरण कर लिए और घन-वाहनकी सेनाको संत्रस्त कर दिया है। केवल इन्द्रजीत ही उसे अपमानित कर सका है। वह उसे बाँधकर रावणके पास ले गया है।" यह सुनकर सीतादेवीके नेत्र नीलकमलकी भाँति खिल उठे और उनसे आँसुओंकी धारा प्रवाहित होने लगी ॥१-१२॥

[२] वह अपने मनमें विचार करने लगीं कि जीव चाहे कोई हो, उसने पूर्वभवमें जो किया है, उसके पूर्वभवमें किए गए

उनका नाश कौन कर सकता है ? जनकसुता इस प्रकार फूट फूटकर रोने लगी। उनकी भुजाएँ माधवी मालाकी तरह थीं। वह बोली, "हे खल क्षुद्र पिशुन कठोरविधि, तुम भाग्यवश अपना मनोरथ पूरा कर लो। दशरथ-कुटुम्बको तुमने तितर-बितर कर दिया है,। पक्षियोंकी तरह तुमने उसे दसों दिशाओंमें बिखेर दिया है। मैं कहीं हूँ, राम कहीं हैं। बीचमें (इतना बड़ा समुद्र) है। अपने इष्ट लोगोंके वियोग और शोकसे पूर्ण आपत्तिकालमें जो महासुखोंमें समर्थ रामके पास मेरा संदेश ले जाता, तुमने युद्धमें उसे भी बँधवा दिया। अथवा क्या तुम भी कुछ कर सकते हो, नहीं कदापि नहीं यह मेरे पापकर्मोंका फल है।

[३] इधर वे लोग (इन्द्रजीत आदि) हनुमानको सुभटश्रेष्ठ रावणके पास ले गये। उसने बैठाकर उससे वार्तालाप किया। और कहा "हे हनुमान, मैं तुमसे कहता हूँ कि जो कुल, बल, जातिसे विहीन है जो फलभोजी दीन हीन तापस है तुमने उसकी सेवा की। हे सुन्दर आखिर तुम्हें यह दुर्बुद्धि क्यों हुई। तुमने अच्छा दूतपन सीखा यह। अथवा अरे तुमने कुछ उसकी परीक्षा नहीं की। देवमयकर मुझ रावणको छोड़कर तुमने उस अभागे रामकी शरण ग्रहण की। (सचमुच) तुमने सिंह छोड़कर गधेको पकड़ा। जिनवरको छोड़कर तुमने पर-सिद्धान्तकी प्रशंसा की। फिर जो जिसके पात्र होता है उसमें वही वस्तु रखी जाती है। बताओ, नारियल (इसकी खोपड़ी) का क्या होता है। जो (तुम) सदैव प्रमुखोंके गुणों चूड़ामणि कटक मुकुट और कटिसूत्रसे सम्मानित किये जाते थे वही तुम पकड़कर लोगोंके द्वारा चोरकी भाँति पकड़ लिये गये। मुझ जैसे उत्तम स्वामीको छोड़कर हे हनुमान तुमने जो कुछ किया है। तुमने कुस्वामीकी सेवाके उस फलको यहीं प्राप्त कर लिया है ॥१-८॥

[४] हनुमानने तब उत्तरमें कहा "तुम लंका नगरीका नारीको तरह सुन्दर भाग करो। किन्तु यह तुम सीता देवी नहीं, किन्तु साक्षात् अपने कुलको मारो (विनाश) लाये हो।" यह सुनकर रावणने कहा, 'और जो दुर्गतिगामी कुकलत्र कुमंत्री, कुस्वामी और कुपरिजन कुमंत्री, कुसेवक, कुतीर्थ कुधर्म और कुदेव इन सबकी भावना करनेवाला होता है, कहा उसे कौनसी आपत्ति नहीं होती।" तब क्रुद्ध हनुमानने उसकी निंदा करते हुए कहा 'परस्त्री घृणाजनक और नाना प्रकारके भयों को दिखाने वाली होती है। वह दुःखकी पोटली और कुलकी कलंक है। इहलोक और परलोकका नाश करने वाली है। यह दुर्जनोंके धिक्कारसे भरी हुई होती है वह यमराजका घर जीवनका आहरन है। वह संसारका द्वार और मोक्षका किवाड़ है। वह लंकाका विनाश और जन्मान्तरका अकल्याण है ॥१-१०॥

[५] हे रावण् यौवन जीवन धन घर सम्पदा और ऋद्धि इन सबको तुम अनित्य समझ कर सीताको वापस भेज दो। कोई मूर्ख जन भी पर धन परदारा और मद्य व्यसनका आदर नहीं करता। तुम तो फिर सकल आगम और कलाओंमें निपुण हो। मुनिसुव्रत भगवान्के चरणकमलोंके भ्रमर हो। जानते हुए भी सीताको अर्पण नहीं कर रहे हो। क्या तुमने अनित्य उत्प्रेक्षा को नहीं सुना। कौन किसका है यह सब मायाका अन्धकार है। जीवन अंजलीके पूँदका तरह अस्थिर है। सम्पत्ति समुद्रकी लहरकी तरह है। लक्ष्मी बिजलीकी रेखाकी तरह चपला है। यौवन पहाड़ी नदीके प्रवाहके समान है। प्रेम भी स्वप्नदर्शनकी तरह है। धन इन्द्रधनुषके समान है। वह क्षणमें होता है और क्षणमें विलीन हो जाता है। शरीर क्षीण हो रहा है और आयु गल रही है।

गज भट-समूहकी तरह यह तुम्हारा नहीं होता। घर, परिजन, राज्य सम्पदा, जीवन और प्रवर लक्ष्मी ये सब अस्थिर हैं। केवल एक धर्मको छोड़कर ॥१-१०॥

[६] हे रावण, तुम अशरण अनुप्रेक्षाका चिंतन कर सीताको भेज दो। नहीं तो तुम्हारी संपदा और समस्त सुख नाशको प्राप्त हो जायँगे। अरे केकशी और रत्नाश्रवके पुत्र, क्या तुमने अशरण अनुप्रेक्षा नहीं सुनी। जब जीवकी मृत्यु पास आ जाती है, तब उसे कोई शरण नहीं मिलती चाहे तलवार और गदा हाथमें लेकर बड़े-बड़े भीषण किंकर, गज, अश्व रथ, ब्रह्म विष्णु, महेश, यम, वरुण, कुबेर, पुरन्दर, गण, यक्ष नागराज और किन्नर भी इसकी रक्षा करें। चाहे वह, पातालतल गिरि-गुफा, आग, समुद्रजल, उपवन, वन, नभतल सुरभवन, दुर्गतिगामी रत्नप्रभ नरक, मंजूषा, कुंभा या धरतीमें पिंजड़ेमें प्रवेश करे, एक क्षणमें उसे निकाल लिया जाता है। अशरण कालमें जीवका और कोई नहीं होता है। केवल एक अहिंसामूलक धर्म (जिन) ही रक्षा करता है ॥१-१०॥

[७] रावण, गजघटा भट समूह, घर-परिजन पवित्र और राज्य ये सब तुम्हें छोड़ देंगे। केवल एक तू ही सुख-दुख सहेगा। आ नवनीलकमलनयन रावण क्या तुमने एकत्व अनुप्रेक्षाको नहीं सुना। मोहके वशसे कोई कितनी भी रति करे, परन्तु इस संसारमें जीवका कोई भी सहायक नहीं है। यह घर, ये परिजन यह भी नहीं देखते, इनको सबने छोड़ दिया। त्रिभुवनकालमें अकेले जन्म लोगे, गर्भावासमें अकेले बसोगे। निगोदमें अकेले रहोगे, प्रिय वियोगमें अकेले ही रोओगे, कर्मसमूह और मोहके

एक्केण भवेक्कड भव समुद्दें । कम्मोह मोह जलयर रउद्दें ॥७॥
एक्कहों जें दुक्खु एक्कहों जें सुक्खु । एक्कहों जें बन्धु एक्कहों जें मोक्खु ॥८॥
एक्कहों जें पाउ एक्कहों जें धम्मु । एक्कहों जें मरणु एक्कहों जें जम्मु ॥९॥

घत्ता

जहिँ तहेँ विहुरेँ सयण-सयाइँ ण दुक्कियइँ ।
पर धम्मि सहाउ जीवहों दुक्किय-सुक्कियइँ ॥१०॥

[८]

'रावण दुवालस दुट्ठु चिन्तेवि विणय समेण ।
अण्णु सरीरु वि अण्णु जिउ चिइहइ एउ जणेण' ॥१॥
पुणु वि परत्थिउ उज्जम महणु । कहइ विहीसणेण सह जम्मणु ॥२॥
अण्णत्ताणुवेक्ख दहगीवहों । अण्णु सरीरु 'अण्णु गुणु जीवहों ॥३॥
अण्णहिँ जणणु अण्णु धणु गोत्तु । अण्णहिँ जणणि सयणु घर परियणु ॥४॥
अण्णहिँ तणउ कलत्तु उप्पज्जइ । अण्णहिँ तणउ तणउ उप्पज्जइ ॥५॥
कइ वि दिवस गय मेलावएँ । पुणु विहडन्ति मरन्तें पत्तें ॥६॥
अण्णहिँ जीउ सरीरु वि अण्णहिँ । अण्णहिँ घरु परिणि वि अण्णण्णहिँ ॥ ॥
अण्णहिँ तुरय महागय रहवर । अण्णहिँ धाम पसिद्धा नरवर ॥८॥
एउ भण्ण मयन्तर अन्तरेँ । अप्प विहावियेँ होइ अणन्तरेँ ॥९॥

घत्ता

जसु कम्मवसेण हुउ रसियउ पिय वम्मयउ ।
जिण-धम्मु मुएवि जीवहों को वि ण अप्पयउ ॥१०॥

[९]

जर-मरण-वाहि-सावयँ दुह-पउरेँ कम्मल-सलिल-रउद्देँ ।
अप्पहि सिय म गाढु करि मं पडि भव-समुद्देँ ॥१॥
सो सुव्वउ मन्दर हुम्मियित्त । सुणु चउगइ संसाराणुवेक्ख ॥२॥

अक्षरोंसे भयंकर भवसागरमें अकेले ही भटकोगे। जीवको अकेले ही दुःख, अकेले ही सुख, भोगना पड़ता है, अकेले ही उसे बन्ध और मोक्ष होता है। अकेले ही उसको पाप धमका बन्ध होता है। अकेले उसीका ही मरण और जन्म होता है। उस सङ्कटके समयमें कोई भी स्वजन नहीं आते, केवल दो ही पहुँचते हैं, वे हैं जीवके सुकृत और दुष्कृत ॥१-१०॥

[८] हे रावण तुम अपने मनमें उचित और अनुचितका विचार करो यह शरीर अलग है और जीव अलग। यह एक क्षणमें नष्ट हो जायगा। बार-बार उपवनका उजाड़नेवाले हनुमानने हृदयसे रावणको अन्यत्व-अनुप्रेक्षा बताते हुए कहा— "शरीर अन्य है और जीवका स्वभाव अन्य है धन-धान्य यौवन दूसरेके हैं। स्वजन घर परिजन भी दूसरेके हैं। को भी दूसरेकी समझना। तनय भी दूसरेका उत्पन्न होता है। यह सब कुछ ही दिनोंका मिलाप है, फिर मरकर सब एकाकी भटकते फिरते हैं। जीव और शरीर भी अन्यके हो रहते हैं, घर भी दूसरेका गृहिणी भी दूसरेकी तुरग महागज और रथवर भी अन्यके हो जाते हैं। आज्ञाकारी नरवर भी दूसरेके ही रहते हैं। इस दूसरे जन्मान्तरमें जीवका सर्वनाश एक क्षणमें ही हो जाता है। लोग कायके परास (अपने मतलब) मुँहके मीठे और प्रिय भाषणवाले होते हैं, परंतु जिनधर्मको छोड़कर इस जीवका और कोई भी अपना नहीं है ॥१-११॥

[९] सीताको अर्पित कर दो। उसे ग्रहण मत करो नहीं तो दुःखसे भरपूर जन्म और मरणसे भयंकर चार गतियोंके समुद्र, और नरक-सागरमें पड़ोगे। हे भुवनभयंकर और दुष्ट्रासाय

जड पड पासाअ मइडमेहिँ। सुर-सरप तिरप मसुमच्छेहिँ ॥३॥
णर णारि णपुंसय रूपएहिँ। विस-मेसेहिँ मयिस पसुरूपएहिँ ॥४॥
माणुस तुरअ विहडमेहिँ। पमाल्लम मार सुम्भमेहिँ ॥५॥
किमि कीड पयङ्गेन्द्रियमिरोहिँ। बिस-बाहस- पाहणें (?) मणोरहिँ ॥६॥
एम्मलु एम्मलु मरलु जम्लु। अक्कमइँ एलम्लु कायलु पाम्लु ॥७॥
गेण्हम्लु मुअम्लु कलेवराइँ। अणुहवइ जीउ पावाइँ करइँ ॥८॥
घरिणी वि माय माया वि घरिणि। महुणी वि धीय धीया वि भइणि ॥९॥
पुत्तो वि बप्पु बप्पो वि पुत्तु। सत्तो वि मित्तु मित्तो वि सत्तु ॥१०॥

घत्ता

मुहएँ ससारे रावण सोक्खु कहिँ तणउ।
जम्मिअमड जीव हिंसु म बन्धहि अप्पणउ ॥११॥

[१]

चउगइ रज्जुय पाइयम्म मुअँ वि सोक्ख- सयाइँ।
तो इ ण हुअय विवि तउ बप्पाहि जीव ण काइँ ॥१॥
भइँ सुर-समर-सए हिँ समक्खुइ। तहकोडाजुवेणय सुणि पडुइ ॥२॥
जं त णिरवसेसु पायालु वि। तिहुअणु मज्झेँ परिट्ठिउ तासु वि ॥३॥
भाउ मिहगु जइ केम वि परिपउ। भयाइ सयलु वि जीवइँ भरियउ ॥४॥
पडिलउ वेयालम-पउमामें। विपउ सत्त-रज्जुय-परिमाणें ॥५॥
वोलउ मझरि-कयागारें। विपउ एक-रज्जुय-विलारें ॥६॥
तइयउ मुअणु मुरय-पउमामें। विपउ पंच-रज्जुय-परिमाणें ॥७॥
मोक्खु वि विपरिय-कयागारें। विपउ एक-रज्जुय-विलारें ॥८॥
इय चउदह-रज्जुए हिँ णिम्मवउ। तिहुअणु तिहिँ पवणे हिँ पडवउ ॥९॥

रावण, तुम चारगतियोंकी संसार-अनुप्रेक्षा सुनो। जल-थल, पाताल और आकाशतलमें स्वर्ग नरक तिर्यंच और मनुष्य ये चारगतियाँ हैं, नर-नारी और नपुंसक आदिरूप, वृषभ, मेष, महिष, पशु, गज, अश्व और पक्षी, सिंह, मोर और साँप, कृमि कीट पतंग और मुगुन्‌ धूप वायस गयद और मक्खी ? (इन सब रूपोंमें) जीव उत्पन्न होता है। वह मारता है, पिटता है, मरता है, खाता है, करुण रोता है, खाता है, खाया जाता है शरीरोंको छोड़ता है, ग्रहण करता है। इस प्रकार जीव अपने पापका फल भोगता है। कभी स्त्री माँ बनती है, और माँ स्त्री बहन उसकी बनती है और उसकी बहन। पुत्र बाप बनता है और बाप पुत्र बनता है। शत्रु भी मित्र बनता है और मित्र शत्रु। इस संसारमें, 'हे रावण' सुख कहाँ है। सीता सौंप दो अपना शील खण्डित मत करो" ॥१-११॥

[१०] हे रावण चौदहराजू इस त्रिभुवनमें तुमने सैकड़ों भोगों का अनुभव किया है। फिर भी तुम्हे तृप्ति नहीं हुई। सीता क्यों नहीं सौंप देते ? अहो सैकड़ों देवयुद्धोंमें अभिमुख रहनेवाले रावण, त्रिलोक-अनुप्रेक्षा सुनो। यह जो निरवशेष आकाश है, उसके बीचमें त्रिभुवन प्रतिष्ठित है, अनादिनिधन वह, किसी भी वस्तुपर आधारित नहीं है। सबका सब जीवराशिसे भरा हुआ है, पहला वेत्रासनके समान सात राजू प्रमाण है, दूसरा लोक झल्लरीके आकारका एक राजू विस्तारवाला है, और तीसरा लोक, पाँचराजू प्रमाण मृदंगके आकारका है मध्य भी छत्र और आकारसे रहित, एक राजू विस्तारवाला है। इस प्रकार चौदह राजुभासे निबद्ध, तीनों लोक तीन पवनोंसे घिरे हुए हैं। उसके

जीवने समस्त जल-थल दिखाई पड़ते हैं, इसमें ऐसा कौन-सा प्रदेश है जिसका जीवने भक्षण न किया हो ॥९-१०॥

[११] इस घिनौने क्षणभंगुर और असार सीताके देह रूपी घरमें तुम उसी तरह लुब्ध हो जिस तरह कुत्ता मांसमें लुब्ध होता है? अरे-अरे सकल भुवनसंतापकारी रावण तुम अशुचि-अनुप्रेक्षा सुनो, यह मनुष्यदेह घृणाकी गठरी है। हड्डियों और नसोंसे यह पोटली बँधी हुई है। चमड़ा कृमिजन्तुओंसे भरी, दुर्गन्धित मांसपिण्डवाली नश्वर मलका घर, कृमि और कीड़ोंसे व्याप्त, पापसे दुर्गन्धित रुधिर और मांसके पात्र रूप चमड़ेवाली और दुर्गन्धका समूह है। अन्तमें यह पोटली, पक्षियोंका भोजन, व्याधियोंका घर और श्मशानका पात्र बनती है। पापसे इसका एक-एक अंग कलुषित है भला बताओ शरीरका कौन-सा प्रदेश अमर है। सूने घरकी तरह यह सूना और अशाश्वत है। इसका कटितल 'पंचफाहर' ? के समान है यौवन भ्रमके अनुरूप है, और सिर नारियलकी खोपड़ीकी तरह है। अरे विश्वविदित लंका-नरेश शरीरके इतना अपवित्र होने पर भी सीताके ऊपर तुम्हारा विरक्तिभाव नहीं हो रहा है ॥११-१०॥

[१२] हे दशमुख! जीवको पाँच प्रकारके पाप लगते हैं। जो जिस तरह सुख-दुखमें होता है उसे वैसा भोग सहन करना पड़ता है। अरे ऐरावतकी सूँड़की तरह प्रचण्डबाहु रावण क्या तुमने आस्रव-अनुप्रेक्षा नहीं सुनी। यह जीव मोह-मदसे ऐसे ही घेर लिया जाता है जैसे मत्त गज सिंहको घेर लेते हैं या नदियोंकी धाराएँ समुद्रको घेर लेती हैं। पाँच प्रकारके ज्ञानावरणीय नौ प्रकारके दर्शनावरणीय दो प्रकारके वेदनीय अट्ठाइस

प्रकारका मोहनीय, चार प्रकारका आयुकर्म, नौ प्रकारका नामकर्म, दो प्रकारका गोत्रकर्म और शुभ-अशुभ पाँच प्रकारका अन्तराय कर्म। इन सब कर्मोंसे जीव आच्छन्न होता, छीजता, मिटता, मारा, खाया और पिया जाता है। जन्म-मरणसे बँधे हुए इस जीवको अपने कर्मोंके वशीभूत होकर उसी प्रकार दुख उठाना पड़ता है जिस प्रकार बन्धनमें पड़ा हुआ गज उठाता है ॥१-१०॥

[१२] रावण! मैं स्नेहपूर्वक कह रहा हूँ। तुम इसे असार समझो। अपने मनमें संवर-तत्त्वका ध्यान करो, और परकीय बचते रहो। त्रिभुवनलक्ष्मीके निकेतन हे रावण, तुम संवर-अनुप्रेक्षा सुनो। रागरहित होकर इस जीवको इस तरह रखना चाहिए कि इसे किसी तरहका कलङ्क न लगे। जो जिसका प्रतिद्वंद्वी है उसकी उससे रक्षा करो कामसे अकामकी रागसे अरागकी दम्भसे अदम्भकी, दापसे अदापकी पापसे अपापकी रोषसे अरोषकी हिंसासे अहिंसाकी मोहसे अमोहकी, मानसे अमान की लोभसे अलोभकी अज्ञानसे दृढ़ ज्ञानकी मत्सरसे दूर मात्सर्य अमत्सरकी वियोगसे दुर्निवार अवियोगकी अधर्मसे दुष्प्रेक्ष्य धर्मपथकी और मिथ्यात्वसे दृढ़ सम्यक्त्वके समूहकी रक्षा करो जिससे देहरूपी नगर नष्ट न हो जाय, हे नवनीत कमलनयन रावण, यह सब जानकर तुम जाकर रामको जनकसुता अर्पित कर दो" ॥१-१ ॥

[१४] रावण तुम निर्जरा-तत्त्वका ध्यान करो जो दया धर्मकी जड़ है। अच्छा हो तुम सीताको छोड़ दो और उसके अनुसार आचरण करो। हे दानवरूपी मातंगोंके अभाव संकाधिप रावण 'तुम निर्जरा-अनुप्रेक्षा सुनो। पक्ष अष्टमी दशमी द्वादशीका

नीरस उपवास करना चाहिए। पक्षमें चार तीन ? या एक बार पारणा करनी चाहिए। एक माहके उपवास वाला चान्द्रायण व्रत, तथा और भी दण्डन-मुण्डन करना चाहिए। बाहर सोना या पेड़ोंके मूलमें या आतापिनी शिलापर वीरासन लगाना चाहिए। सुन्दर ध्यानसे मनको वशमें करना वन्दना पूजन और दयाचा करना दुःसह संयम, तप और नियमोंका पालना, घोर बाइस परीषह सहन करना, चारित्र ज्ञान, व्रत और दर्शनका अनुष्ठान तथा अन्य दण्डन-खण्डन करना चाहिए। इस प्रकार जो सैकड़ों जन्मोंसे पापरूपी कर्ममल संचित हैं वे सब वैसे ही गल जाते हैं जैसे बाँध खोल देनेसे पानी बह जाता है ॥१-९ ॥

[१५] हे रावण! तुम अहिंसा धर्मके दस अंगोंको जानते हो। फिर भी सीताका परित्याग नहीं करते। आखिर इसका क्या कारण है। जिनवरके चरणकमलोंके भ्रमर दशशिर रावण दसधर्म-अनुप्रेक्षा सुनो। पहली तो यह बात समझो कि तुम्हें जीवदयामें तत्पर होना चाहिए। दूसरे मार्दव दिखाना चाहिए। तीसरे सरलचित्त होना चाहिए। चौथे अत्यन्त लाघवसे जीना चाहिए। पाँचवें तपश्चरण करना चाहिए। छठे संयम धर्मका पालन करना चाहिए। सातवें किसीसे याचना नहीं करनी चाहिए। आठवें ब्रह्मचर्यका पालन करना चाहिए। नवें सत्य व्रतका आचरण करना चाहिए। दसवें मनमें सब बातका परित्याग करना चाहिए। तुम इन धर्मोंको जानो। धर्म होनेसे ही केवल मुक्तकी प्राप्ति होती है, और धर्मसे ही चिन्तित फल मिलता है। हे रावण! धर्मसे ही गृह, परिजन सब अभिमुख (अनुकूल) होते हैं, और एक उसके बिना सब विमुख हो जाते हैं ॥१-१०॥

[१६] मनके लिए आनन्दकर, अपने कुलका कलमहीन चन्द्र हनुमान जानता था कि जानकी समस्त विश्वमें भय और भीतिसे मुक्त है। फिर भी उसने कहा, "हे रावण अपने मनमें गुना, और बोधि अनुप्रेक्षा सुनो। जीवको दिनरात यही सोचना चाहिए, भवभवमें मेरे स्वामी परम जिन हों, भवभवमें मुझे समाधिमरण प्राप्त हो, जन्म-जन्ममें सुगति गमन हो, जन्म-जन्ममें जिनगुणोंकी सम्पदा मिले, जन्मजन्ममें दर्शन और ज्ञानका साथ हो, भवभवमें अचल सम्यक् दर्शन हो भवभवमें मैं कममलका नाश करूँ। जन्म-जन्ममें मेरा महान् सौभाग्य हो जन्म-जन्ममें मुझे धर्मनिधि उत्पन्न हो। हे रावण, जिनशासनमें ये बारह प्रकारकी अनुप्रेक्षाएँ हैं, जो इन्हें पढ़ता, सुनता और अपने मनमें श्रद्धा करता है, वह शाश्वत रातदिन सुखोंको पाता है। ये सुन्दर वचन रावणके मनमें गड़ गये और उसने अपने हाथ जोड़कर जिनका जयकार किया ॥१-१०॥

•

पचपनवीं सन्धि

रावणके सम्मुख अब बहुत बड़ी समस्या थी एक ओर तो उसके सामने दुर्लभ धर्म था और दूसरी ओर विपुल-विरहाग्नि। इन दोनोंमें वह किसको ले, इस सोचमें वह व्याकुल हो उठा।

[१] एक ओर तो वह जिनवरके उपदेशसे नहीं चूकना चाहता था तो दूसरी ओर, उसके मनको काम भेद रहा था, एक ओर विरूपित भवसंसार था, तो दूसरी ओर वह कामके वशी-

[२] यदि मैं अर्पित कर दूँगा तो नामको कलङ्क लगेगा, लोग कहेंगे कि रामके डरसे ऐसा किया।" अधर्मीके अभिमानी रावण अपने मनमें यह सब विचार करके हनुमानके सम्मुख हुआ, और बोला, "अरे बुद्धिहीन बाल गोपाल, बँधा हुआ भी व्यर्थ क्यों बक रहा है। लवण-समुद्रमें पत्थर फेंकना चाहता है। रासभके स्थानमें सुख खोजना चाहता है। मेरुको सोनेका दण्ड दिखाना चाहता है। सूर्यमण्डलको दीपक दिखाना चाहता है। चन्द्रमामें चाँदनी मिलाना चाहता है। ढाईपिण्डपर निहाईको घुमाना चाहता है। इन्द्रसे वज्रबाण छीनना चाहता है। मेरे आगे कहानी चलाना चाहता है।" यह सुनकर सुन्दर पवनपुत्र (नागपाशसे दोनों हाथ जकड़े हुए थे) ने कहा, "रावण, इसमें तुम्हारा कुछ भी दोष नहीं है, असलमें मुनिवरका कहा सत्य होना चाहता है, कुछ ही दिनोंमें सीतासे तुम्हारा नाश दिखाई देता है॥१-९॥

[३] इन दुर्वचनोंसे रावण भड़क उठा मानो सिंह सिंहको क्षुब्ध कर दिया हो। उसने कहा, 'मारो-मारो, पकड़ो या सिर गिरा दो, नहीं तो इसका पक्ष भङ्ग कर दो। इसे गधेपर बैठाओ, सिर मुड़वा दो रस्सीसे बाँधकर घर-घर दिखाओ"। यह सुनकर राक्षस दौड़े उनके हाथमें तलवार मूसल फरसा और शक्ति शस्त्र थे। इस अवसरपर हनुमान भी अपने शरीरको छिपाकर नागपाशको तोड़कर और भटोंका संहार करता हुआ उठा। देखने में वह ऐसा लगता मानो शनीचर ही प्रतिष्ठित हुआ हो जहाँ-जहाँ उसकी दृष्टि जाती वहाँ वहाँ सम्मुख आनेमें और कोई समर्थ नहीं पा रहा था। तब रावणने कहा "मैं स्वयं मारूँगा जहाँ जायगा, वहीं इसे मारूँगा"। इस प्रकार हनुमान, उस विद्यापर

द्वीपकी समस्त सेनाको बंधितकर, और उनके मुखपर स्याहीकी कूँची फेरनेके लिए रावणके ऊपर झपटा ॥१-६॥

[४] सारी सेना अहंकारशून्य होकर यस रह गई, मानो ज्योतिषचक्र ही अपने स्थानसे च्युत हो गया हो, या कमलवन हिमसे ध्वस्त हो उठा हो या दुर्विलासिनीका मुख ही कलंकित हो गया हो या रत्नोंसे उत्तम भवन ही उद्दीप्त नहीं हो रहा हो। यह बार-बार उठना चाह रही थी। इसपर विभीषणने रावणसे कहा "यह कुपूत है, इससे क्या यह उत्तम हो जायगा। पहाड़के ऊपरसे पक्षी निकल जाता है तो क्या इससे वह उसका अपयश बखान हो जाता है, यह कहकर उसने रावणको निवारण किया। इसपर भी, हनुमानने आकाशमें जाते हुए पक्षीकी भाँति एक क्षण रुककर और आशाभिसे भड़ककर अपने मनमें सोचा कि मैं राम-लक्ष्मणकी असाधारण कान्तिको संसारमें घुमाऊँ, और दशमुखके जीवनकी तरह इस घरको ही उखाड़ दूँ ॥१-६॥

[५] तब हनुमानने अपने भुजबलसे शिखर और नींव सहित उसके प्रासादको क्षणमात्र हुए दलित कर दिया। मानो हनुमानने लंकाका यौवन ही मसल दिया था। वह राजप्रासाद आठ गात्रों कुसुमद्वार तोरण मणिमय किवाड़ और छज्जोंसे सहित था। मणियोंके वर्णांग ? से सुन्दर तथा वलभी और चन्द्रशाला से मनोहर था। उसका तल हीरोंसे जड़ा था। और खम्भों और स्तम्भ थे। जिनपर भ्रमर गुनगुना रहे थे। समस्त भूमि चमकते हुए मणियों तथा सूर्यकान्त और चन्द्रकान्त मणियोंसे अंकित थी। इन्द्रनील और वैदूर्यसे निर्मल पद्मराग और मरकत मणियोंसे उत्तम मृणाली मालासे कम्पमान और मोतियोंके झूमरोंसे सुन्दर था वह भवन ॥१-५॥

[६] उसाके साथ लगे हुए पाँच सौ मकान और भी ध्वस्त हो गये। पवनके आनन्द हनुमानने उन सबका ऐसे दल-मल कर दिया मानो गजेन्द्रने घुसकर सरोवरको ही रौंद डाला हो। फिर भी स्वेच्छासे घूमते हुए उसने आते जाते, गुप्तगोष्ठीका गिरा दिया। आकाशतलमें घूमता हुआ हनुमान ऐसा साह रहा था मानो लंकाका 'आत्म ही' उड़कर जा रहा हो। इस अवसरपर, सुरवरसिंह रावण अपने हाथमें चन्द्रहास तलवार लेकर दौड़ा। परन्तु मन्त्रियोंने बड़े कष्टसे उसे रोकवाया। उन्होंने कहा —"देव! क्या आप राजाकी मर्यादाको भूल गये। यदि शृगाल गुफाका मुख नष्ट कर दे तो क्या उससे सिंह रुठ जाता है"। जब उसे यह कहकर रोका तो सीता अपने मनमें खूब सन्तुष्ट हुई। गृह शिखरको तोड़कर हनुमान जब लौटकर आया तो सीता ही की तरह राम आनन्दसे अपने अङ्गोंमें फूले नहीं समाये॥१-६॥

[७] जैसे ही हनुमान किष्किन्धनगरके सम्मुख आया तो वानराने उसे प्रवर आशीर्वाद दिया "हे वत्स! तुम चिरायु और अपराजित बना पावसकी तरह सूर्यके प्रतापको हरण करो सरोवर की तरह लक्ष्मी और शोभासे सहित बनो। वज्रभद्रकी तरह लक्षणम (लक्षण और गुण) तथा प्रिय (सीता और शोभा) से संयुक्त रहो।" उसने भी दूरसे आदरपूर्वक उन सब आशीर्वादोंका ग्रहण किया। इसके अनन्तर जगसिंह अद्वितीय वीर वह, लंका सुन्दरी से पूछकर अपने स्कन्धावारमें पंटाध्वनिसे मुखरित अपने विमानमें स्थित हो गया। तब तूर्य बज उठे और कल-कल शब्द होने लगा जब वह महायशमी सुभावके नगरमें पहुँचा तो कुमार अङ्ग और अङ्गद अपने पिताके साथ निकले। अन्य राजा भी अपने अपने अमात्योंके साथ बाहर आये। वे सब मिलकर उसे भीतर

चे गये। तब राम लक्ष्मणने भी आते हुए उसे देखा। वनवासमें घूमते हुए, दैवके परिणामसे उनका जो यश नष्ट हो गया था वह पुण्योदयकालसे वह फिरसे उन्हें लौटता हुआ दिखाई दिया ॥१-१०॥

[८] तब त्रिलोकबान्धवका अभय देनवाले रामके चरणोंपर हनुमान गिर पड़ा। उनके चरणकमलोंपर पड़ा सिर ऐसा जान पड़ रहा था मानो नीलकमलपर मधुकर ही बैठा हो। रामने उसे अपने हाथोंसे उठाकर कुशल आशीर्वाद दिया। कण्ठा, कटक, मुकुट और कटिसूत्र सब कुछ देकर, राम अपने मनमें उदीप्त हो उठे। हनुमानको उन्होंने अपने आधे आसनपर बैठाया। सीताने जो चूड़ामणि भेजा था वह हनुमानने पहचानके लिए उज्ज्वल नाम रामकी दाईं हथेलीपर रख दिया। उस समय जो परितोष रामको हुआ वह शायद सीताके विवाहमें भी कठिनाईसे हुआ होगा। तब रामने कहा— आज भी मेरा हृदय शान्तिको प्राप्त नहीं हो रहा है हनुमान तुम शीघ्र कहो कि वह मर गई या जीवित है ॥१-९॥

[९] तब जिन-चरणकमलके सेवक रामसे हनुमानने कहा—"हे देव जानकीको मैंने प्रतिदिन तुम्हारा नाम लेते हुए— जीवित देखा है। जिस समय निशाचर उन्हें सताते उस प्रतिकूल अवसरपर भी तुम्हीं उसके इस लोकके स्वामी हो और परलोक के भट्टारक अरहंत साधुकी तरह वह परमात्माका ध्यान करती हैं उपवास आदिसे आत्मरक्षा करती रहती हैं। मैंने जाकर स्त्रियोंके बीचमें बाईस दिनमें उन्हें पारणा कराई। जब मैंने प्रणाम करके अंगूठी दी तो उन्होंने मुझे यह चूड़ामणि अर्पित किया। और भी देव यह पहचान है कि आपने गुप्त और सुगुप्त मुनियोंको दान

किया था। परपर बसुहार बरसे और आपने जटायुका आख्यान सुना था। और एक पहचान यह भी है कि देव, आप भाईके पीछे गये थे" ॥१–६॥

[१] यह सुनकर राम हर्षित शरीर हो उठे, उन्होंने पूछा, "अरे हनुमान, बताओ तुम यहाँ कैसे पहुँचे।" इस अवसरपर अपने आसनपर बैठे हुए, नेत्रानन्ददायक महेन्द्रने हँसकर कहा "अरे इसका साहस बहुत भारी है, आदरणीय आप सुनें, इसने बाओ साहस किया है। राजा प्रह्लादका पुत्र रणमें अजेय पवनञ्जय है, उसे मैंने अपनी लड़की अंजनासुन्दरी दी थी, वह वरुणके ऊपर चढ़ाई करनेके लिए गया था, वह बारह बरसमें एक बार, स्कन्धावारसे वास दकर उससे मिला। परन्तु पवनका मालान ईर्ष्याके कारण कलंक लगाकर अंजनाको घरसे निकाल दिया मैंने भी उसे प्रवेश नहीं दिया वह बनमें चली गई। वहीं यह उत्पन्न हुआ। उसी बैरका स्मरणकर आपके दूत कार्यके लिए आकाशमार्गसे आते हुए इसने हमारे नगरको ध्वस्त कर दिया और मुझे भी इसने स्त्री और पुत्रके साथ पकड़ लिया। सैकड़ों सुभट भग्न हो गये और हाथियोंका झुण्ड दिशाओंमें भाग गया। इसका इतना रणचरित्र, हे देव मैंने देखा" ॥१–१०॥

[११] यह सुनकर तीन कन्याओंके साथ, दधिमुख राजाने उसकी प्रशंसा करते हुए कहा—"स्वयं यदि पुरन्दर भी आयें, परन्तु इसके चरित्रको कौन पा सकता है। दो महामुनि प्रतिमा योगसे अपने ध्यानमें आठ दिनसे स्थित थे। अत्यन्त निकट एक और स्थानपर थे मेरी तीनों लड़कियाँ बैठी हुई थीं। इतनेमें बनमें आग लग गई और वह चारों ओरसे आगकी लपटोंमें आ गया। धक-धक करती और धुँआती हुई धीरे-धीरे वह आग गुरुभाके

किया था। परपर वसुहार बरसे और आपने जटामुका आख्यान सुना था। और एक पहचान यह भी है कि देव, आप भाईके पीछे गये थे" ॥१-६॥

[१] यह सुनकर, राम हर्षित शरीर हो उठे उन्होंने पूछा, "अरे हनुमान, बताओ तुम यहाँ कैसे पहुंचे।" इस अवसरपर अपने आसनपर बैठे हुए, नेत्रानन्ददायक महेन्द्रने हँसकर कहा, "अरे इसका साहस बहुत भारी है, आदरणीय आप सुनें इसने जो साहस किया है। राजा प्रह्लादका पुत्र रणमें अजेय पवनञ्जय है, उसे मैंने अपनी लड़की अञ्जनासुन्दरी दी थी वह वरुणके ऊपर चढ़ाई करनेके लिए गया था वह बारह वरसमें एक बार, स्कन्धावारसे वापस आकर उससे मिला। परन्तु पवनकी माताने ईर्ष्याके कारण कलंक लगाकर अंजनाको घरसे निकाल दिया मैंने भी उसे प्रश्रय नहीं दिया यह वनमें चली गई। वहीं यह उत्पन्न हुआ। उसी वैरका स्मरणकर आपके दूत कार्यके लिए आकाशमार्गसे जाते हुए इसने हमारे नगरका ध्वंस कर दिया और मुझे भी इसने स्त्री और पुत्रके साथ पकड़ लिया। सैकड़ों सुभट भग्न हो गये और हाथियोंका झुण्ड दिशाओंमें भाग गया। इसका इतना रणचरित्र है यह मैंने देखा" ॥१-१ ॥

[११] यह सुनकर तीन कन्याओंके साथ, दधिमुख राजाने उसकी प्रशंसा करते हुए कहा—"स्वयं यदि पुरन्दर भी आये, परन्तु इसके चरित्रका बखान पा सकता है। दो महामुनि प्रतिमा योगसे अपने ध्यानमें आठ दिनसे स्थित थे। अत्यन्त निकट एक और स्थानपर ये मेरी तीनों लड़कियाँ बैठी हुई थीं। इतनेमें वनमें आग लग गई और वह चारों ओरसे आगकी लपटोंमें आ गया। धक-धक करती और धुआंती हुई धार-धार वह आग गुफाओंके

हाता हुआ क्रुद्ध लक्ष्मण ऐसा जान पड़ता था मानो जयभीरु अभिमानी रावणके ऊपर वज्रपात ही आ रहा हो ॥१–६॥

[३] कोई-कोई सुभट अपनी पत्नियोंका आलिङ्गन करके समद्ध हो गये। किसी एकको उसकी धन्या पान दे रही थी, कोई एक गर्वित भी उस ग्रहण नहीं कर रहा था। उसका कहना था कि आज मैं सैन्यदलों, गजवरों, रथवरों पाण्डलों और विजय लक्ष्मीरूपी वधू द्वारा दिये गये नरवरोंसे सम्पूर्णित पूगकसे अपने भाग्यको सम्मानित करूँगा। किसी एकको उसकी पत्नी खिले हुए पुष्पोंकी माला माला दे रही था परन्तु वह यह कहकर नहीं ले रहा था कि मैं इसको नहीं चाहता। आर्ये, सुन्दरी इस ले जा, मेरा यह सिर तो आज स्वामीके काममें ही निपट जायगा। किसी एकको उसकी पत्नी आभूषण दे रही थी परन्तु वह उसे तृणके समान समझ रहा था। उसने कहा, क्या गर्वसे और क्या रससे ? मैं यशसे अपने तनको मण्डित करूँगा। किसी एककी पत्नीने यह इच्छा प्रकट की कि हे नाथ, तुम गज-कुम्भोंको फाड़कर प्रिय चन्द्र और शरदकी तरह उज्ज्वल मोतियोंको अवश्य लाना ॥१–६॥

[४] एक ओर शुभङ्कर सुन्दर विमान सजने लगे जो पताकाओंकी टंकारसे सुन्दर रुनझुन करते हुए भौंरोंकी झंकारसे युक्त थे। चन्द्रकान्त और सूर्यकान्त मणियोंकी किरणोंसे व्याप्त थे। उनके शिखर इन्द्रनील मणियोंके घन थे। लटकती हुई मालाओंमें जो आच्छादित हीरोंकी पंक्तियोंसे शोभित पद्मराग मणियोंसे उज्ज्वल, वैदूर्य और वज्र मणियोंकी प्रभासे निर्मल, मणियोंकी मालाओंसे चपल किंकिणियोंकी परस्पर ध्वनिसे मुखरित थे। कम्पित पताकाएँ उनके ऊपर फहरा रही थीं। सैकड़ों

रास सब रहे थे। इस तरह सुग्रीव रत्नोंसे दीप्त था विमानोंमें राम और लक्ष्मणको ले गया। वन्दियोंके जय-जयकार शब्दके साथ, विमानमें बैठे हुए राम और लक्ष्मण ऐसे मालूम होते थे मानो देवोंसे घिरे हुए प्रवर विमानोंके साथ, इन्द्र और प्रतीन्द्र हों॥१-६॥

[५] कितने ही के पास अंबारीसे सजी हुई, सुविराज सुन्दर घण्टायुगलसे गाती हुई गजघटा थी। जो भौंरोंसे मुकुल चित्रांग और परिपूर्ण मदसे विशिष्ट थी। सिंदूरके पङ्कसे उसका शरीर पंकिल था और जो शीत्कारके स्फार और गर्जनसे गम्भीर थी। महावतसे रहित और निरङ्कुश वह वेश्याकी भाँति सुन्दर रूपसे मस्ताती हुई जा रही थी। कईके पास रथ और रथियोंके समूह एक दूसरेको चूर-चूर करते हुए चल पड़े। वे अश्वों सारथी कलिभव और तरह-तरहके अस्त्रोंसे समृद्ध थे। कईके पास पैदल सेना थी जो चलते हुए तूणीरों और बाणोंसे भयङ्कर थी। महा धनुषोंसे सहित थी। वह, उत्तम खड्गोंको निकालकर घुमा रही थी। कईके पाससे हींसती हुई उत्तम अश्वोंकी सेना निकली। वह सुकलत्रकी तरह सुकुलीन और पदसंचारको नहीं भूल रही थी॥१-६॥

[६] एक बार समरकी विडम्बनामें धीर, वीर योद्धा गरज रहे थे। एकने कहा "मैं समुद्र सोख लूँगा। एक और ने कहा "मैं निशाचरराजका शोषण करूँगा।" एक औरने कहा, "मैं सेनाको पकड़ लूँगा।" एक औरने कहा, "मैं कुम्भकर्णको पकड़ूँगा।" एक औरने कहा "मैं मेघनादको"। एक औरने कहा— मैं भटसमूहको पकड़ूँगा।" एक औरने कहा, "हे मित्र! सुनो। मैं अपने हाथसे सीता रामके हाथमें दूँगा।" एक औरने कहा,

"अरे भमीसे संग्रामके बिना ही गरजनेसे क्या, यह सब उसी समय जाना जायगा, जब स्वामिभूत राम शत्रु-सेनाको विघटित करेंगे।" एक और वीर यह सोचकर अपने मनमें खिन्न हो गया, कि मैंने स्वामीके लिए अवसर क्यों दिया। एक और सुभट रामके आगे खड़ा होकर गरज उठा, "जब मेरा सिर युद्धमें गड़ जायगा तभी प्रभुका अवसर पूरा होगा" ॥१–६॥

[७] एक और सुभटके पास विद्याधरों द्वारा साधित विद्याएँ थीं। पण्णत्ती, बहुरूपिणी वैताली आकाशतलगामिनी, स्तम्भिनी आकर्षणी मोहिनी सामुद्री रुद्री कौशावी भोगवन्त्री,चन्द्री वासवा,ब्रह्माणी रौरवदारिणी नैऋति वायवी वारुणी,यम्री सूरी, वैश्वानरी मातंगी मृगेन्द्री वानरी हरिणी वाराही तुरगमी वक्षशापणी गारुडी, पम्बइ ?? कामरूपिणी बहुरूपकारिणी और भभाडी विद्या। इस प्रकार राम और सुग्रीवकी सेना सन्नद्ध हो गई। मानो जम्बूद्वीप ही लंकाद्वीपका अतिथि होना चाह रहा था ॥१–८॥

[८] अपने कुलमें प्रथम होनेवाले रामके चलते ही, शुभ शकुन दिखाई दिये। जैसे गन्धोदक, चन्दन सिद्ध शेष (नाग) जिनपूजा करके ध्याय ? और उत्तम वेशवाला वृषभ राजा सुन्दर कमल नग्न साधु, सफेद छत्र सफेद गज सफेद भ्रमर, सफेद अश्व और सफेद चमर। सब अलंकारोंका पहन

हुए पवित्र नारी। हाथमें दहीका घड़ा लिये हुए उत्तम कन्या, निधूम आग, अनुकूल पवन, और प्रियसे मिलाने वाला, कौएका काँव-काँव शब्द। इन्हें देखकर यशसे उन्नत आम्बवन्तने रामसे कहा, "हे देव! आप धन्य हैं, आपका यह गमन सफल है, भला इतने सुनिमित्त किसे मिलते हैं।" तब रामने हँसकर कहा, "विश्वके आधार स्तम्भ भट्टारक जिनको हृदयमें धारणकर यात्रा करनेसे ही ये सुनिमित्त अपने आप हुए"॥१-८॥

[६] रामकी सेनाके प्रस्थान करते ही, वाहनसे वाहन टकराने लगा, चिह्नसे चिह्न, रथवरसे रथ छत्रसे छत्र, गजवरसे गजवर, तुरगसे तुरग नरसे नर, चरणसे चरण, करतलसे करतल मिलने लगा। रण-रससे भरी हुई सेना आकाशमें नहीं समा सकी, वह देवागमनके समान आ रही थी। थोड़ी दूरपर उन्हें महासमुद्र दीख पड़ा। वह शिंशुमार मगर और अजगरोंसे रौद्र था। मच्छपर नाक और ग्राहसे घार और स्थूल लहरोंसे तरंगित था। फेनसे उज्ज्वल तोय और तुषारसे युक्त उसका बहुत बड़ा तट था ?? रामकी सेना उसपर ठहर गई मानो मेघ जाल ही नभतलमें ठहर गया हो। विमानोंपर आरूढ़ राजाओंने लवण समुद्र उसी तरह लाँघ लिया जैसे सिद्धालयको जाते हुए सिद्ध पार गतियों वाले भव-संसारका अतिक्रमण कर जाते हैं॥१-६॥

[९] उस सागरके मध्यमें थोड़ी दूरपर देवोंका भी असाध्य वलंधर नगर था, उसमें रहने वाले सेतु और समुद्र नामक दोनों विद्याधर भयंकर युद्ध करनेके लिए आग आकर स्थित हो गये। उन्होंने कहा "अरे, तुमपर आज कृतांत क्रुद्ध हुआ है। इन्द्रका राज्य कौन हरण कर सकता है, आपने ज्वालमालामें आन

प्रवेश कर सकता है। प्रलयके आनेपर कौन बच सकता है। शेषनागके फनसे मणि कौन तोड़ सकता है। लङ्काके सम्मुख कौन पग बढ़ा सकता है।" अनन्तर सरककर सब लोगोंको सम्बोधित करते हुए उन्होंने और भी कहा—"अरे किष्किन्धा-नरेश अरे सुषेण, अरे कुमुद कुन्द, मेघनाद नल, नील विराधित, पवनवात, दधिमुख महेन्द्र महेन्द्रराज, सुना और भी जो-जो नरपति हैं वे भी सुनें। यदि सम्भव हो तो शत्रुजनोंसे नम्र होकर आप लौट आयें। सेतु और समुद्रके रहते हुए आपका लङ्काके प्रति प्रस्थान कैसा ?" ॥१-१०॥

[११] इसी अन्तरमें जयश्रीके लिए शीघ्रता करनेवाले रामने सुग्रीवसे पूछा—"ये जो राक्षस हथियार लिए हुए दिखाई दे रहे हैं। ये किसके अनुचर हैं।" यह सुनकर नतमस्तक सुग्रीवने स्तुति-वचन पूर्वक रामसे कहा—"आदरणीय, ये सेतु और समुद्र विद्याधर हैं, ये यहाँ रावणका नाम लेकर सेवावृत्तिमें नियुक्त हैं। युद्धमें इनका प्रतिद्वंद्वी कोई नहीं है। केवल नल और नील इनके प्रति युद्ध कर सकते हैं।" यह सुनकर रामका हृदय खिन्न हो गया। उन्होंने तत्काल उन दोनोंका आदर किया। वे भी रामको नमस्कार करके, पुलकके कारण ऊँचे कञ्चुकोंसे विशिष्ट होकर लड़ने लगे। नल समुद्रके सम्मुख दौड़ा और नील सेतुसे जा भिड़ा जैसे ही जैसे गजराज गजराजसे और हाथी हाथीसे जा भिड़ते हैं ॥१-९॥

[१२] रणमें भयङ्कर वे आपसमें भिड़ गये दोनों विद्याधर और दोनों नल तथा समुद्र। विज्ञानकरण करते तथा और भी दूसरे समस्त आयुधोंसे वे प्रहार करने लगे। दोनोंके बहुत

दमयमा रहे थ और नेत्र रक्तकमलकी तरह आरक्त थ। इसी बीचमें रावणके अनुचरन मकरहरी (सामुद्री) विद्या छोड़ी। वह गरजती, गुल-गुल करती और तटपर तरगोंका समूह व्याप्त करती हुई दौड़ी, तब इधर युद्धके प्रांगणमें जयश्रीके कामी, नल्न निरुद्ध होकर, सामर्थ्यके साथ महीधर विद्याका प्रयोग किया। वह समस्त जलको समाप्त करती हुई पहुँची। इस प्रकार उस माया समुद्रको नष्टकर और विद्याधरकरणसे उस उन्मूलन कर ?? नलन समुद्रके ऊपर और नीलने सेतुके ऊपर चढ़कर उनके सिरकमलको बलपूर्वक पकड़कर रामके चरणोंमें रख दिया ॥१-६॥

[१३] जब उन्होंने सेतु और समुद्रको ला दिया तो रामन उन दोनोंका समान रूपसे आदर किया। उन्होंने भी प्रसन्न होकर अपन हाथस कुमार लक्ष्मणको अपनी सत्यश्री कमलाक्षी विशाखा, गलचूला और गुणमाला ये पाँच कन्याएँ देकर सीतापति रामकी सेवा स्वीकार कर ली। एक रात आसनपर जैसे ही प्रभात हुआ सूर्योदय होन पर रामन कूच कर दिया। तब उनकी सेनाको सुवल पहाड़ मिला। उसपर भी सुवल नामक एक विद्याधर था। वह गजकी तरह गरजकर अपन भयंकर धनुषकी टंकारकर दौड़ा। लेकिन जब तक वह युद्ध-प्रांगणमें लड़ पाता न लड़ तब तक समु और समुद्रन उसको निवारण कर दिया। उन्होंने कहा "आ दूसर जनपदमें जाकर इस प्रकार युद्ध कर रहा है, उस रामके पैरोंपर गिर पड़ा। अपना पास मत करो।" ॥१-८॥

[१४] तब विद्याधर सुवलन रामको उसी तरह प्रणाम किया जिस तरह राजा श्रेयांसन प्रथम जिन ऋषभ देवको किया था। एक रात वहाँ टिककर सेना चल पड़ी मानो वह धुवगाय छन्द (गायक और-भ्रमरोंस सहित) कमलवन ही था। मानो जिनको

समय रावण आ रहा था और उसमें बार-बार स्वागमन हो रहा था। थोड़ा और चलनेपर उन्हें लंकानगरी दीख पड़ी। आराम सीमा सरोवर प्रचुर सुन्दर नन्दन वन, प्राचीर द्वार, गोपुर, घर, रथ, मार्ग, चतुष्पथ राजस्थान, सुहावने कामिनी-प्रासाद, चौहट्ट, टॅट, बाजार, विशाल चैत्यगृह, विहार तथा फहराते हुए बड़े-बड़े ध्वजोंसे वह शोभित हो रही थी। विपरीत हवामें उड़ता हुआ ध्वज-समूह दूरसे ऐसा शोभित हो रहा था मानो राम और लक्ष्मणके आनेपर रावणका मन ही डगमगा रहा हो ॥१-६॥

[१५] विद्याधरोंने लंकाद्वीपको देखकर, हंस द्वीपमें अपना डेरा डाल दिया। उसके अधिपति हंसरथको युद्ध-प्रांगणमें जीतकर मानो उन्होंने शत्रुके सिरपर तलवार ही मार दी थी। पदातिगण यथायथ भट ठहर गये। रथ छोड़ दिये गये और अश्व ढील दिये गये। गज एक पांतमें रक्खे हुए थे। तलवार और सब्बल तूणीर उतार दिये गये। नाना प्रकारके विद्याधरोंके समूह उस हंस द्वीपमें हंसोंके झुण्डोंकी भाँति ठहर गये। मानो स्वयं इन्द्र ब्रह्मा रुद्र और केशवके साथ प्रयाण छोड़ दिया हो। वहाँपर कितने ही योधा कह रहे थे, 'देव, मैं आज सुन्दरतासे युद्ध करूँगा"। तब एक योधाने कहा। 'अरे मित्र इतनी उतावली क्यों कर रहे हो" और दूसरे कितने ही योद्धा अपनी पत्नियोंके साथ, अपने अपने भवनोंमें सुखसे रमण कर रहे थे। कितने ही जिनकी आराधना अर्चा तथा पूजा करके अपने हाथों उन्हें प्रणाम कर रहे थे ॥१-८॥

सुन्दर काण्ड समाप्त

●

हमारे सुरुचिपूर्ण हिन्दी प्रकाशन

उर्दू शायरी

१	शेर-ओ-शायरी	श्री अयोध्याप्रसाद गोयलीय	८)
२	शेर-ओ-सुखन [भाग १]	श्री अयोध्याप्रसाद गोयलीय	८)
३	शेर-ओ-सुखन [भाग २]	श्री अयोध्याप्रसाद गोयलीय	३)
४	शेर-ओ-सुखन [भाग ३]	श्री अयोध्याप्रसाद गोयलीय	२)
५.	शेर-ओ-सुखन [भाग ४]	श्री अयोध्याप्रसाद गोयलीय	३)
६	शेर-ओ-सुखन [भाग ५]	श्री अयोध्याप्रसाद गोयलीय	६)

कविता

७	वर्धमान [महाकाव्य]	श्री अनूप शर्मा	६)
८.	मिलन-यामिनी	श्री बच्चन	४)
९	धूपके धान	श्री गिरिजाकुमार माथुर	३)
१०	मेरे बापू	श्री हुकमचन्द बुखारिया	२॥)
११	पथ-प्रदीप	श्री शान्ति एम ए	२)

ऐतिहासिक

१२	खण्डहरोंका वैभव	श्री मुनि कान्तिसागर	६)
१३	खोजकी पगडंडियाँ	श्री मुनि कान्तिसागर	४)
१४	चौलुक्य कुमारपाल	श्री लक्ष्मीशंकर व्यास	४)
१५.	कालिदासका भारत [भाग १-२]	श्री भगवतशरण उपाध्याय	८)
१६	हिन्दी जैन साहित्य-परिशीलन १-२	श्री नेमिचन्द्र शास्त्री	५)

नाटक

१७	रजत-रश्मि	श्री डा रामकुमार वर्मा	२॥)
१८.	रेडियो नाट्य शिल्प	श्री सिद्धनाथ कुमार	२॥)
१९	पचपनका फेर	श्री विमला लूथरा	३)
२०	और खाई बढ़ती गई	श्री भारतभूषण अग्रवाल	२॥)
२१	दस्यु के तीर	श्रीकृष्ण एम ए	३)

ज्योतिष

२२	भारतीय ज्योतिष	श्री नेमिचन्द्र जैन ज्योतिषाचार्य	६)
२३	करलक्खण [सामुद्रिकशास्त्र]	प्रो. प्रफुल्लकुमार मोदी	।।।)

कहानियाँ

२४	संघर्षके बाद	श्री विष्णु प्रभाकर	३)
२५.	गहरे पानी पैठ	श्री अयोध्याप्रसाद गोयलीय	२॥)
२६	आकाशके तारे धरतीके फूल	श्री कन्हैयालाल मिश्र 'प्रभाकर'	२)
२७	पहला कहानीकार	श्री रावी	२॥)
२८.	खेल-खिलौने	श्री राजेन्द्र यादव	२)
२९.	अतीतके कम्पन	श्री आनन्दप्रकाश जैन	३)
३	जिन खोजा तिन पाइयाँ	श्री अयोध्याप्रसाद गोयलीय	२॥)
३१	नये बादल	श्री मोहन राकेश	२॥)
३२.	कुछ मोती कुछ सीप	श्री अयोध्याप्रसाद गोयलीय	२॥)
३३	[illegible] पंख	श्री आनन्दप्रकाश जैन	३)
३४	नये चित्र	श्री सत्येन्द्र शरत्	३)
३५.	जय-दोल	श्री अज्ञेय	३)

उपन्यास

३६	मुक्तिदूत	श्री वीरेन्द्रकुमार एम. ए.	५)
३७	तीसरा नेत्र	श्री आनन्दप्रकाश जैन	२॥)
३८.	रक्त-राग	श्री देवेशदास	३)
३९.	संस्कारोंकी राह	राधाकृष्ण प्रसाद	२॥)

संस्मरण, रेखाचित्र

४	हमारे आराध्य	श्री बनारसीदास चतुर्वेदी	३)
४१	संस्मरण	श्री बनारसीदास चतुर्वेदी	३)
४२	रेखाचित्र	श्री बनारसीदास चतुर्वेदी	४)
४३	जैन जागरणके अग्रदूत	श्री अयोध्याप्रसाद गोयलीय	५)

सूक्तियाँ

४४	ज्ञानगंगा [सूक्तियाँ]	श्री नारायणप्रसाद जैन	६)
४५	शरत्‌की सूक्तियाँ	श्री रामप्रकाश जैन	२)

राजनीति

४६	एशियाकी राजनीति	श्री परदेशी साहित्यरत्न	६)

निबन्ध, आलोचना

४७	जिन्दगी मुसकराई	श्री कन्हैयालाल मिश्र 'प्रभाकर'	४)
४८	संस्कृत साहित्यमें आयुर्वेद	श्री अत्रिदेव 'विद्यालंकार'	३)
४९	शरत्‌के नारी-पात्र	श्री रामस्वरूप चतुर्वेदी	४॥)
५	क्या मैं अन्दर आ सकता हूँ ?	श्री रावी	२॥)
५१	बाजे पायलियाके घुँघरू	श्री कन्हैयालाल मिश्र 'प्रभाकर'	४)
५२	माटी हो गई सोना	श्री कन्हैयालाल मिश्र 'प्रभाकर'	२)

दार्शनिक, आध्यात्मिक

५३	भारतीय विचारधारा	श्री मधुकर एम ए	२)
५४	अध्यात्म-पदावली	श्री राजकुमार जैन	४॥)
५५	वैदिक साहित्य	श्री रामगोविन्द त्रिवेदी	६)

भाषाशास्त्र

५६	संस्कृतका भाषाशास्त्रीय अध्ययन	श्री भोलाशंकर व्यास	५)

विविध

५७	द्विवेदी-पत्रावली	श्री बैजनाथ सिंह 'विनोद'	२॥)
५८	ध्वनि और संगीत	श्री ललितकिशोर सिंह	४)
५९	हिन्दू विवाहमें कन्यादानका स्थान	श्री सम्पूर्णानन्द	१)

भारतीय ज्ञानपीठ, दुर्गाकुण्ड रोड, वाराणसी